भूमिका ।

द्विजोंका यथासमय और यथाविधि उपनयन होना अति आवश्यक है। इसीके होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विजन्मा कहलाते हैं। दूसरे संस्कार यदि कुसमय हों तो इतनी हानि नहीं हो सकती जितनी यज्ञोपवीतके न होनेसे हो सकती है, कारण यह है कि यज्ञोपवीत होनेसे ही बालक वेदाध्ययन इत्यादिका अधिकारी होता है। यदि यह अत्युपयोगी संस्कार यथावत् कराया जाय तो पठन, पाठन और यज्ञ इत्यादि सबमें सुलभता होती हैं।

अब तक जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे या तो बहुत बड़े हैं जिनमें अनेक अनुपयोगी विषय लिखे हैं या अति लघु हैं जो पर्याप्त नहीं हैं। इस पुस्तकमें सरल भाषामें सब विषय पूर्ण रीतिसे लिखे हैं जिनका उपयोग कर्मकाण्डी लोग सरल रीतिसे कर सकते हैं। उपक्रमणिकाओंके लगानेसे यह पुस्तक और भी अमूल्य कर दी गई है। इन उपक्रमणिकाओंमें उपनयनके मुहूर्त, यज्ञोपवीत धारण, वेदारम्भ समावर्तन, वेदोंका अनध्याय इत्यादि पूर्ण रूपसे लिखा गया है।

यदि इस पुस्तकमें कोई अशुद्धि रह गई हो तो पाठकगण कृपा कर प्रकाशकके पास लिख भेजें तो वे अति अनुगृहीत होंगे और पुनरावृत्तिमें पुस्तक और भी शुद्ध और लाभकारी हो जायगी।

सम्पादक ।

श्रीगणेशायनमः

भाषाटीकासहिता

यजुर्वेदीय उपनयनपद्धतिः



श्रीगणेशायनमः। अथोपनयनम्। तत्र शुद्धसमये रविगुरुचन्द्र तारादिशुद्धौ जन्मतो गर्भाष्टमेऽब्दे वानूकूल्ये षोडषसंवत्सराभ्यन्तरे ब्रह्मवर्चसकामस्य पञ्चमेप्युदगयन आपूर्यमाण पक्षेऽनध्याय षष्ठीरिक्ताद्यतिरिक्ततिथौ रविगुरुशुक्रान्यतमवारे मध्याह्नादर्वाक् कुमारपित्राभ्युदयिके कृते तदभावे आचार्येणैव कृते ब्राह्मणान्माणवकंच भोजयित्वा सशिखकृतक्षौरं स्नानान्तरं यथाशक्त्यलंकृत्वा बहिःशालायां तुषकेशशर्करादिशून्यपरिष्कृतभूमौ आचार्योग्निस्थापनं कुर्यात्।

श्रीगणेशायनमः। शुद्ध समयमें अर्थात् शुभ मुहूर्त निश्चित करके रवि, गुरु, चन्द्र, तारा, इत्यादिके शुद्धताका पूर्ण विचार करके जन्मसे अथवा गर्भ से आठवें *वरसमें ('गर्भाष्टमे' का अर्थ यह है कि जबसे बालक गर्भमें आया तबसे आठवें बरसमें–इस विचारमें बालक की आधुनिक अवस्थामें नौ महीना जोड़ना चाहिये) अनुकूल समयमें सोलह बरसके भीतर करे; अथवा यदि पुत्रके ब्रह्म तेजकी अभिलाषा हो तो पांचवें वरसमें सूर्य जब उत्तरायण हों तब शुक्ल पक्षमें अनाध्याय षष्ठी, चतुर्दशी और नवमीके अतिरिक्त अन्य शुभ तिथियों में रवि, गुरु तथा शुक्रवारके दिन मध्याह्नसे पहिले बालकका पिता नान्दी

---

* आठवां वर्ष ब्राह्मणके वास्ते लिखा है, ग्यारहवां वर्ष क्षत्रियके लिये और बारहवां वैश्यके लिये समझना चाहिये।

श्राद्ध करे, और पिताके न होने पर आचार्य ही नान्दी मुख श्राद्ध करे। इसके अनन्तर ब्राह्मण और बालकोंको भोजन करा, शिखा *सहित क्षौर करा स्नान कराके यथाशक्ति आभूषण पहना कर शालाके †बाहर ऐसे स्थानमें आचार्य अग्नि स्थापन करे जहां घास, रेह अथवा बाल न हों। (अर्थात् शुद्ध स्थान देखकर अग्निस्थापन होना चाहिये)

तत्र हस्तमात्रपरिमितचतुरस्त्रभूमिं कुशकरणकसमूहनानन्तरं गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेन प्रागग्रप्रादेशमात्रमुत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य उल्लेखन क्रमेणाऽनामिकांगुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाऽभ्युक्ष नवीनकांस्यपात्रेणाग्निमानीय स्वाऽभिमुखंनिदध्यात्।

वहां (अर्थात् अग्नि स्थापन करते समय) एक वेदी चौकोर एक हाथ लंबी और उतनी ही चौड़ी (चौरस भूमिपर) बनावे और उसको कुशों-से झाड़कर गायके गोबरसे लीपकर स्रुवाके मूल भाग (अर्थात् डंडीके किनारेसे) अपने आगेके भागसे प्रारम्भ करे और हाथ फैला-कर दूर ले जाकर एक रेखा खींचे, उत्तरसे प्रारम्भ करके तीन ऐसी रेखा खींचे और इसी खिंची हुई रेखाके क्रमसे कानी उंगली और अंगूठेसे मिट्टी उसी वेदीमेंसे निकालकर आगेकी ओर फेंके उसके अनन्तर जलसे सिंचनकर (अर्थात् जल छिड़ककर) नई काँसेकी थालीमें अग्निदेवताको मंगवा अपने सामने पूरबकी ओर रक्खे।

ततः कुमारमाचार्यः शिष्यद्वाराग्नेः पश्चाद्दक्षिणपार्श्वेऽवस्थापयति। ततः कुमारं बद्धाञ्जलिं संबोधयति। ॐब्रह्मचर्यमागामिति ब्रूहीति प्रैषानन्तरम्। ॐ ब्रह्मचर्यमागामिति कुमार आह। ततःॐ

---

* शिखा सहित क्षौर कराना वैदिक श्रेष्ठमार्ग है और केवल क्षौर लौकिक है।
† शालाके बाहरका अर्थ है मैदान अथवा घरके आँगनमें, कोठरीके भीतर नहीं।

ब्रह्मचार्यसानीति ब्रूहीत्याचार्येणोक्ते । ॐ ब्रह्मचर्य-सानीति कुमार आह । अथ माणवकमाचार्योवासः परिधापयति । ततः आचार्यपठनीयो मन्त्रः ।

इसके अनन्तर शिष्य द्वारा बालकको आचार्य अग्निके दूसरे पार अपने सामने दक्खिनकी ओर बैठाता है । तब कुमारसे हाथ जोड़वा-कर नाम लेकर पुकारता है और कहता है "ॐ ब्रह्मचर्य मागामिति" ऐसा कहो (मैं इस आचार्यकी आज्ञासे ब्रह्मचर्य प्राप्त करूं) तब बालक "ॐ ब्रह्मचर्य सानि" ऐसा कहता है । तब आचार्य कुमारको वस्त्र पहनाता है । निम्नलिखित मन्त्र आचार्यके पढ़ने योग्य हैं ।

ॐ येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतं तेन त्वापरिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ।

ततो माणवकस्य द्विराचमनम् । अथ माणवकस्य वेष्टनत्रयेण तत्प्रवरग्रथितां मेखलामाचार्यो बध्नाति । तत्र माणवकपठनीयो मंत्रः ।

मन्त्रोंका अर्थ—बृहस्पति (देवताओंके गुरु) ने जिस विधिसे यह अमृत (अर्थात् अपूर्व, सर्व दोपरहित) वस्त्र इन्द्रको पहनाया, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आयुष्य, बल और तेज बढ़ानेके निमित्त पहनाता हूँ । वस्त्र धारण करनेके बाद आचार्य कुमारको दो बार आचमन करावे । तब आचार्य कुमारके जितने प्रवर हों उतनी गाँठ देकर तीन बार मूंजकी करधनी उसके कमरमें लपेटे । तब निम्न-लिखित मन्त्र बालकको पढ़ना चाहिये ।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती-

---

१ स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ।
आचान्तः पुनराचामेद्वासो परिविधाय च ॥ १ ॥ इति याज्ञवल्क्यः ।
अर्थात् स्नान, पान, छींकके बाद, तथा सोकर उठने पर, भोजन करने पर बजारसे आकर और वस्त्र पहनकर दो बार आचमन करना चाहिये ।

म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥ १ ॥ ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान्भवति जायमानः ॥ तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति वा ॥ २ ॥ तत आचाराद्यज्ञोपवीतसहितभांडाष्टतयं ब्राह्मणेभ्यो दत्वा तत्सदद्यामुकगोत्रः स्वकीयोपनयनकर्मविषयकसत्संस्कारप्राप्त्यर्थे इदं भाण्डाष्टतयं सयज्ञोपवीतं सदक्षिणं यथायथानासेति।

मन्त्रका अर्थ—यह मूँजकी करधनी मेरे दुष्ट वचनोंको खण्डन करती हुई और वर्णको पवित्र करती हुई आई; यह मेखला प्राण और अपानसे बलकी वृद्धि करती हुई भगिनीके सदृश यह देवी (स्तुति योग्य) है। अथवा "ॐ युवा सुवा सुवासाः इत्यादि" मन्त्र पढ़ कर मेखला बांधे। इसके अनन्तर आचारसे यज्ञोपवीतके सहित आठ पात्र (मिट्टीके कलश) ब्राह्मणोंको देता हुआ सङ्कल्प करे:—"ॐ तत्सत् इत्यादि देशकाल स्मरण करके अमुकगोत्र वाला मैं अपने उपनयन संस्कारकी श्रेष्ठताके निमित्त (यज्ञोपवीत दक्षिणासहित) ये आठ पात्र अमुक अमुक (यहां पर जिन जिन गोत्रवाले ब्राह्मणोंको ये दिये जाँय उनके गोत्रका नाम लेना चाहिये) गोत्रके ब्राह्मणोंको देता हूँ।

ततो यज्ञोपवीतं परिदधाति माणवकः। ॐ यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषि लिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दो यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः। ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ इति मन्त्रेण—

इसके बाद कुमार निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर यज्ञोपवीत धारण करे। मन्त्रार्थ:—ॐ यज्ञोपवीतं इत्यादि मन्त्रका परमेष्ठी ऋषि है,

लिङ्गोक्ता देवता है और इसका विनियोग यज्ञोपवीत पहननेमें है। हे कुमार! इस पवित्र यज्ञोपवीतको धारण कर जो ब्रह्मके साथ उत्पन्न हुआ और आयुष्यकी वृद्धि करनेवाला है यह यज्ञोपवीत तेरा बल और तेज हो (अर्थात् इसके धारण करनेसे तेरा बल और तेज बढ़े)।

तत ऐणेयमाजिनं तूष्णीं परिधत्ते। ततो माणवकः केशपरिमितपालाशदण्डमाचार्यः तूष्णीं तस्मै प्रयच्छति। तं च यो मे दंड इति प्रजापतिर्ऋषिर्दण्डो देवता यजुर्दण्ड ग्रहणे विनियोगः। ॐ यो मे दण्डः परापत द्वैहायसोधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय। इति मन्त्रेण माणवको दण्डं गृह्णाति।

तब कुमार चुपचाप (अर्थात् बिना मन्त्रका उच्चारण किये) काले मृगके चर्मको धारण करता है। तब आचार्य बालकको बिना मन्त्र पढ़े केश इतना ऊँचा (अर्थात् पैरसे लेकर जहां तक शिखा पहुँचे उतना ऊंचा) पलासका दण्ड देता है और कुमार उसको "योमे दण्डः" इत्यादि मन्त्र पढ़कर धारण करता है। मन्त्रका अर्थ—"यो मे दण्डः इत्यादि" इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि है, दण्ड देवता है, यजुस् छन्द है और दण्ड धारण करनेमें इसका विनियोग (उपयोग) है। आकाशसे उत्पन्न जो दण्ड पृथ्वीपर पड़ा उसको फिर मैं आयुष्यकी वृद्धिके लिये, वेद प्राप्त करने लिये तथा ब्रह्मचर्यके तेजके लिये धारण करता हूँ।" ऊपर लिखे मन्त्रको पढ़ कर बालक दण्डको लेता है।

तत आचार्यो वारिणा स्वमञ्जलिं पूरयित्वा कुमारस्याञ्जलिं तेनैवाञ्जलिजलेन पूरयति। ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऽऊर्जे दधातन। महे-

---

१ यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ५०

रणाय चक्षसे ॥१॥ ॐ योवः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेहनः। उशतीरिवमातरः ॥ २ ॥ ॐ तस्मा ऽअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजन यथा च नः ॥३॥ इति ऋग्भिः ।

इसके अनन्तर आचार्य अपनी अञ्जलीको पानीसे भर कर कुमारकी अञ्जलीको उसी (अर्थात् अपने अञ्जलीके) जलसे भर दे और निम्नलिखित मन्त्रोंका उच्चारण करे ।

मन्त्रोंका अर्थ—

आपोहिष्ठा इत्यादि तीनों मन्त्रोंका सिन्धु द्वीप ऋषि है, गायत्री छन्द है, जल देवता है और मार्जन करना इनका विनियोग है।

हे जलदेव आप मुझको यश और सुख देनेवाले हो, मुझको वलके लिये तथा अन्न इत्यादिके उपभोग करनेके लिये धारण करो और अत्यन्त सुन्दर देखने योग्य वल और पुष्टि करनेवाले हो अर्थात् जैसे हम अन्न खानेमें समर्थ हों, उसी प्रकारसे विधिपूर्वक स्नान इत्यादि करनेमें तथा ब्रह्म साक्षात्कारमें भी समर्थ हों ॥१॥ हे जलदेव ! तुम्हारे अति कल्याणकारक रसके हम भागी हों, जिस प्रकार माता पुत्रको स्तनपान इत्यादिसे पालन करती है, उसी प्रकार तुम भी मुझको पालन करो ॥ २ ॥ हे जलदेव ! जिस पापके नाशके लिये उत्पन्न हुए हो उस तुम्हारे रससे हम सर्वदा तृप्त हों, हमको तुम प्रजाके उत्पन्न करनेके निमित्त समर्थ करो ॥ ३ ॥

ततः सूर्यमुदीक्षस्वेति आचार्य प्रैषानन्तरम् । तच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येमशरदः शतंजीवेमशरदः शत ँ शृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाः स्यामशरदः शतंभूयश्चशरदः शतात् ॥१॥ इत्यनेनादित्यंपश्यति ।

---

१ यजुर्वेद अध्याय ३६ मन्त्र २४

तव 'सूर्यको देखो' ऐसा गुरुके कहने पर निम्निलिखित मन्त्रको पढ़ता हुआ बालक सूर्यको देखता है। मन्त्रका अर्थ :—[तच्चक्षुः इत्यादि मन्त्रका दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि है, अक्षयतीत पुर उष्णिग् छन्द है, सूर्य देवता है और सूर्यका उपस्थान विनियोग है] जो देवताओंको प्रिय, स्वच्छ और संसारके नेत्ररूप सूर्य भगवान् पूर्व दिशामें उदय होते हैं उनके आशीर्वादसे हम सौ वर्ष देखें (अर्थात् सौ वर्ष आरोग्य रहकर जीवित रहें) सौ वर्ष तक जीते रहें, सौ वर्ष तक सुनते रहें अर्थात् सौ वरस तक हमारे कानोंसे सुनाता रहे। सौ वरस तक बोलते रहें अर्थात् वाणी हमारी पुष्ट रहे। सौ वरस तक अदीन रहें अर्थात् किसीके सम्मुख याचक न हों। केवल सौ वरसों तक ही नहीं परन्तु सौ वरससे अधिक भी हमारी इन्द्रियां पुष्ट रहकर अपना अपना कार्य करें।

अथ कुमारस्य दक्षिणांसं सहृदयं दक्षिणहस्तेन स्पृशत्याचार्यः। ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु॥ मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ इति मंत्रेण।

अब सूर्यका दर्शन करनेके अनन्तर कुमारके हृदय सहित दहिने कंधेको आचार्य अपने हाथसे छूकर निम्निलिखित मन्त्रको पढ़ता है।

मन्त्रका अर्थ :—(हे बालक !) तेरे हृदयको मैं अपना निश्चय करता हूं कि तेरा चित्त मेरे चित्तके अनुकूल होवे, इसी प्रकार मेरी वाणी एक मनसे सेवन करो अर्थात् जो मैं कहूँ उसे सावधान चित्त होकर सुनो और बृहस्पति तेरे हृदयको मेरे हृदयसे मिलावे (अर्थात् तेरा और मेरा हृदय एकसा हो जाय)

ततः कुमारस्य दक्षिणहस्तं गृहीत्वा तंपृच्छति को नामासि श्रीअमुकशर्माऽहं भोः इति कुमार आह। कस्य ब्रह्मचार्य सीत्याचार्यः। भवत इति कुमार आह। पुनराचार्यो भाषते। ॐ इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्याग्निराचार्य स्तवाहमाचार्यः श्रीअमुक शर्मन्।

तब कुमारका दाहिना हाथ पकड़कर आचार्य पूंछे कि "तुम्हारा नाम क्या है," तब कुमार कहे "मैं अमुक शर्मा हूँ" अर्थात् नाम......

शर्मा है; फिर आचार्य पूछे कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो–तब कुमार उत्तर दे कि मैं आपका (ब्रह्मचारी) हूँ। फिर आचार्य इस मन्त्रको पढ़े—"ॐ इन्द्रस्य इत्यादि" मन्त्रका अर्थ:—हे अमुक शर्मन्! तुम इन्द्रके ब्रह्मचारी हो, तुम्हारा आचार्य अग्नि है और मैं हूँ। (श्रुति वाक्य है "गुरुरग्निर्द्विजातीनाम्" अर्थात् द्विजातियोंका गुरु अग्नि है)

अथ माणवकं बद्धाञ्जलिं पूर्वादिदिक्षु प्रदक्षिणमुपस्थानं कारयति। अथाचार्यो माणवकं भूतेभ्यः परिददाति। तत्र आचार्यस्य मन्त्रपाठः।

इस प्रश्नोत्तरके अनन्तर आचार्य बालकको हाथ जोड़वाकर उसको पूर्व इत्यादि चारों दिशाओंमें क्रमसे घुमाकर उपस्थान अर्थात् नमस्कार करावे। तब आचार्य बालकको निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर भूतोंके प्रति अर्पण करे।

ॐ प्रजापतये त्वा परिददामीति प्राच्यम्। ॐ देवाय त्वा सवित्रे परिददामीति दक्षिणस्याम्। ॐ अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामीति प्रतीच्याम्। ॐ द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामीति उदीच्याम्। ॐ विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामीत्यधः। ॐ सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै इत्यूर्ध्वम्।

अर्थ—आचार्य बालकसे कहे कि तुम्हारे कष्ट निवारणके निमित्त मैं तुम्हे प्रजापति अर्थात् ब्रह्माको अर्पण करता हूँ, ऐसा कहता हुआ पूर्व दिशाको अर्पण करे। फिर सूर्य देवताको अर्पण करता हूँ, ऐसा कहकर दक्षिण दिशाको अर्पण करे। जल और औषधियोंको अर्पण करता हूँ, ऐसा कहकर पश्चिम दिशाको दे। आकाश और पृथ्वीको तुम्हें अर्पण करता हूँ, ऐसा कहकर उत्तर दिशाको अर्पण करे। सब इन्द्र इत्यादि देवताओंको तुम्हें अर्पण करता हूँ, ऐसा कहकर पृथ्वीको अर्पण करे, सब भूतोंके प्रति तुमको अर्पण करता हूँ ऐसा कहकर आकाशको अर्पण करे।

ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य आचार्य दक्षिणदिशि उपविशति माणवकः। ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय ततः ॐ अद्य कर्तव्योपनयनहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षण रूप ब्रह्मकर्म कर्तुममुक-

गोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूल वासोभिर्ब्रह्म-त्वेन त्वामहं वृणे इति ब्राह्मणं वृणुयात् । ॐ वृतोस्मीति वचनम् ।

तब अग्निकी परिक्रमा करके बालक आचार्यके दक्षिणकी ओर बैठे । तब हाथमें पुष्प, चन्दन, ताम्बूल और वस्त्र लेकर "ॐ अद्य कर्तव्यो० इत्यादि "संकल्प करके यज्ञोपवीतमें करने योग्य होमके ब्रह्म कर्म करानेके लिये अमुक गोत्रवाले अमुक नामके ब्राह्मणको इन पुष्प, चन्दन, ताम्बूल और वस्त्रसे ब्रह्माके भावसे तुमको वर्णी देता हूँ ऐसा कहकर ब्राह्मणको वर्णी दे । तब ब्राह्मण "ॐ वृतोस्मि" ऐसा कहे ।

ततः पुष्पचंदनताम्बूलवस्त्राण्यादाय अद्य कर्त-व्योपनयनकर्मणि होतृकर्म कर्तुममुकगोत्रममुक-शर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्हो-तृत्वेन त्वामहं वृणे इति होतारं वृणुयात् । ॐ स्व-स्तीति प्रतिवचनम् । ॐ यथाविहितं कर्म कुर्वीत्या-चार्येणोक्ते । करवाणीति ब्राह्मणो वदेत् ।

तब इसी प्रकार फूल, चन्दन, ताम्बूल और वस्त्र लेकर "ॐअद्य०" इत्यादि सङ्कल्प करके यज्ञोपवीतमें करने योग्य होताका कर्म करनेके लिये अमुकगोत्र और अमुक नामवाले तुम ब्राह्मणको इन पुष्प चन्दन ताम्बूल तथा वस्त्रोंसे होताके भावसे वरता हूँ (अर्थात् होताके पदपद नियुक्त करता हूँ) ऐसा कहकर होताको वर्णी दे। औरहोता "ॐ स्वस्ति" ऐसा कहे । "फिर ॐ यथाविहितं कर्म कुरु" अर्थात् शास्त्रोक्त विधान करो ऐसा कहनेपर आचार्य "ॐ करवाणि" मैं करूँगा ऐसा कहे ।

ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्राह्मणमग्निं प्रदक्षिणं कार-यित्वाऽस्मिन्कर्मणित्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय भवा-नीति तेनोक्ते तदुपरि ब्राह्मणमुदङ्मुखमुपवेश्य ततः

प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैरा-च्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ।

तब अग्निसे दक्षिणकी ओर शुद्ध आसन बिछा कर उसके ऊपर कुशा इस प्रकार रक्खे कि जिसमें उसकी नोक पूरबकी ओर रहे। अब ब्राह्मणको अग्निकी प्रदक्षिणा कराके "इस कर्ममें तुम ब्रह्मा हो" ऐसा कहकर और ब्राह्मणके 'भवानि' (= होता हूँ) ऐसा कहने पर उस आसनपर ब्राह्मणको उत्तर मुँह बैठाकर प्रणीतापात्रको आगे रख कर जलसे भरकर कुशोंसे आच्छादित करके ब्रह्माके मुखको देखकर अग्निके उत्तर कुशाके ऊपर स्थापन करे ।

ततः परिस्तरणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशा-नान्तम् । ब्रह्मणोग्निपर्यन्तम् नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् ।

तब कुशा बिछावे—चौंसठ कुशका चौथा भाग अर्थात् सोलह ले और इनमेंसे चार कुशा तो अग्नि कोणसे ईशान कोण तक बिछावे और चार कुशा ब्रह्मासे अग्निकोण तक, चार कुशा निर्ऋतिकोणसे वायव्यकोण पर्यन्त तथा चार कुश अग्निसे प्रणीता पात्र पर्यन्त बिछावे। पूर्वोत्तर कोणसे प्रारम्भ करता हुआ बराबर बिछाता चला जाय।

ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम् । पवित्रार्थं साग्रमनन्तगर्भकुशपत्रद्वयम् प्रोक्षणीपात्रम् । आज्यस्थाली संमार्जनार्थं कुशाः । उपयमनकुशाः । समिधास्तिस्रः । स्रुवः आज्यं षट्पं-चाशदुत्तराचार्यमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नाऽऽमतण्डुलपू-र्णपात्रं पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणा-साद्नीयम् ॥

तब अग्निसे उत्तर पश्चिम दिशामें पवित्र छेदनके निमित्त तीन कुशा रक्खे और पवित्राके लिये अगले भाग सहित परन्तु भीतरी गर्भ निकाल कर दो कुशा स्थापन करे। इसी तरह प्रोक्षणी पात्र भी स्थापन करे। घृतपात्र स्थापन करे; मार्जन करनेके लिये कुशा, उपयमन कुशा। तीन पलासके समिधा। स्रुवा, घृत तथा आचार्यके दो सौ छप्पन (२५६) मुट्ठी चावलोंसे भरकर पूर्णपात्र—ये सब वस्तु पवित्र छेदन कुशाके पूरबकी ओर क्रमसे रक्खे।

ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा सपवित्र करेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकांगुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किञ्चित्रिरुत्क्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीं त्रिरभिषिच्य। प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तुसेचन कृत्वाऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्।

इसके अनन्तर पवित्र छेदन कुशाओंसे दो (२) पवित्रा छेदन करके (पहन कर) पवित्रा सहित दाहिने हाथसे प्रणीता पात्रके जलको तीन वार प्रोक्षणी पात्रमें डालकर पवित्रायुक अनामिका (कानी अंगुलीके बगलवाली अङ्गुली) और अंगूठेसे उस जलको ऊपरकी ओर उछाल कर, प्रणीता पात्रके जलसे प्रोक्षणी पात्रको तीन वार सिंचन कर प्रोक्षणी जलसे सब वस्तु सिंचन करे अर्थात् इस जलसे सब वस्तुके ऊपर मार्जन करे और प्रणीता पात्रके बीचमें प्रोक्षणी पात्रको स्थापन करे।

ततः आज्यास्थाल्यामाज्यानिर्वापः। अधिश्रयणाम् ततः कुशं प्रज्वल्याज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत् प्रक्षिप्य स्रुवं त्रिः प्रतप्य संमार्जनकुशानामग्रैरंतरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात्।

तब घृत पात्रमें घृत डाले और इसे अग्निके ऊपर धरे। तब कुश-को जलाकर घृतके ऊपरसे दक्षिण ओरसे घुमाकर और उसको (कुशको) अग्निमें फेंककर और स्रुवा तीन वार (अग्निमें) तपाकर संमार्जन अर्थात् मार्जन करनेवाले कुशके अग्रभागके अन्तरसे (भीतरी भागसे) और मूल अर्थात् जड़से वाहारके भागमें स्रुवाको मार्जन करे और प्रणीता पात्रके जलसे सींचकर फिर तीन वार तपाकर दक्षिणकी ओर स्थापन करे।

ततः आज्यमग्नेरवतार्य त्रिःप्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसं कृत्वा पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम्।

तव घृतको (घृतके पात्रको) अपने आगे उतारकर तीन वार प्रोक्षणीके समान उछालकर और देखकर और इसमें यदि कोई बुरी चीज पड़ी हो तो उसे निकालकर फिर प्रोक्षणी पात्रके जलको तह उछाले।

ततः उत्थायोपयमनकुशान्वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्तास्तिस्रः समिधः प्रक्षिपेत् उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणाक्रमेणाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति।

तब उठकर उपयमन कुशाओंको वांयें हाथमें लेकर मनमें प्रजापति (ब्रह्मा) का ध्यान करके चुपचाप (विना कुछ कहे) तीन समिधा में घी लगाकर अग्निमें फेंके। फिर वैठकर पवित्र सहितःप्रोक्षणी पात्र-के जलसे प्रदक्षिणा क्रमसे अग्निमें छिड़ककर और प्रणीता पात्रमें पवि-त्रियोंको रखकर दहिना घुटना मोड़कर अपनेसे।लेकर ब्रह्मा तक कुश द्वारा युक्त होकर स्रुवासे प्रदीप्त अग्निमें निम्नलिखित घृतकी आहुती दे।

तत्रतत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवात्रस्थित घृतशेषस्य प्रोक्षणी पात्रे प्रक्षेपः।

आहुतिके अनन्तर स्रुवामें बचे हुए घीको प्रोक्षणी पात्रमें रक्खे।

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० इति मनसा । ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय० इत्याघारौ । ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये० । ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय० इत्याज्यभागौ । ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये० । ॐभुवः स्वाहा इदं वायवे० । ॐस्वः स्वाहा इदं सूर्याय० । एता महाव्याहृतयः ।

प्रजापतये स्वाहा इत्यादि सात व्याहृतियां हैं । प्रथम मन्त्र मनमें कहना चाहिये । फिर निम्नलिखित मन्त्रोंसे आहुति दे ।

ॐ त्वंन्नो अग्ने वरुणस्यविद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठा ँ । यजिष्ठोवह्नितमः ँ शोशुचानोऽविश्वाद्वेषा ँ सिप्रमु मुग्ध्यस्मत्स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्याम् ।

त्वन्नो० और सत्वन्नो० इन मन्त्रोंके वामदेव ऋषि हैं, त्रिष्टुप् छन्द है, अग्नि और वरुण देवता हैं, सब प्रायश्चित्तके निवृत्त करनेमें इनका विनियोग है ॥ मन्त्रका अर्थ—हे अग्नि ! तुम वरुण भगवानके क्रोध शान्त करनेके योग्य हो अतएव इनका क्रोध दूर करो । तुम सब कार्योंमें साक्षी हो, चतुर और सर्वश्रेष्ठ हो; सब देवता लोग यज्ञोंका अंश तुमको देते हैं और तुम प्रकाशमान हो, अतएव मेरे मन्दबुद्धि पुरुषसे किये हुए अनादर और मूर्खताको क्षमा करो सब कल्याण और सुख दो ।

ॐ सत्वन्नो अग्नेऽवमोभवेतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्वनो वरुण ँ रराणोव्वीहिमृडीक ँ सुहवोनऽएधि-स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्याम्० ॥

अर्थ—हे अग्नि ! आप सबको पालन करनेवाले हो अतएव आज प्रातःकालसे लेकर (अर्थात् दिन भर तक) मेरी रक्षा करो । मैंने

(१) यजुर्वेद अ० २१ मन्त्र ३. (२) यजु० २१–४ ।

तुमको बुलाया है अतएव केवल मेरी रक्षा ही न करो परन्तु सुखसे आकर मेरे दिये हुए पुरोडाश (चरु) को भक्षण करो और यज्ञके स्वामी वरुण देवताको देकर पूजन करो जिससे वरुण देवता भी मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा कल्याण करें।

ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि ॥ अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज ऽ स्वाहा। इदमग्नये० ॥

अर्थ—हे अग्नि ! आप सबके अन्तर्यामी हो और प्रायश्चित्त द्वारा सब पुरुषोंको शुद्ध करनेवाले हो, कल्याणको देनेवाले हो, क्योंकि हमारे किये हुए यज्ञोंको इन्द्र इत्यादि देवताओंको देते हो, अतएव हमारा भी दुःख हटाकर अपूर्व आनन्दको दो।

ॐ येते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोऽअद्य सवितोत—विष्णु-र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्का स्वाहा ॥ इदं वरुणाय०। सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः॥

अर्थ—हे वरुण ! यज्ञके विघ्नसे उत्पन्न हुए बड़े बड़े कठिन जो सैकड़ों हजारों तुम्हारे पाश (फन्दे) हैं उन पाप रूपी फन्दोंको सूर्य, विष्णु भगवान, मरुत् और सब देवता हटावें। इस मन्त्रसे वरुण सूर्य इत्यादि देवताओंको आहुति देवे।

ॐ उदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमंविमध्यम ऽ श्रथाय ॥ अथा वयमादित्यव्रतेतवानागसोऽअदितयस्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाय० ॥ एताः सर्वाः प्रायश्चित्तसंज्ञकाः इति (ततोऽन्वारब्धं विना) ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये०। मनसा प्राजापत्यम्। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नयेस्वि-

---

(१) यजु० २१—४। (२) यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र १२।

ष्टकृते। इति स्विष्टकृद्धोमः। ततः संस्रवप्राशनम् आचमनं च। ततो ब्रम्हणे दक्षिणा दानम्।

हे वरुण! आपके जो उत्तम, मध्यम और नीच ये तीन प्रकारके पाश (फन्दे) हैं, उनमेंसे उत्तम पाशसे हमारी रक्षा करो। मध्यम पाशको ढीला करके हमारी रक्षा करो और नीच पाशको हटा दो। हे अदितिपुत्र! ऐसा करनेसे निरपराधी हम अदीन हो जावेंगे। उपरोक्त मन्त्रसे वरुण देवताको आहुति दे। ये सब आहुतियां प्रायश्चित्त नामकी हैं, इसके बाद अन्वारब्धके बिना होम करे और 'प्रजापतये स्वाहा' इत्यादि मन्त्रोंका उपयोग करे। इसके अनन्तर प्रोक्षणी पात्रके अवशिष्ट घृतका पान करे और आचमन करे इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे।

ॐ अद्य एतास्मिन्नुपनयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतम् अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे। इति दक्षिणादानम् ॐस्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः।

अब अद्येत्यादि० सङ्कल्प पढ़कर 'एतस्मिन्......सम्प्रददे' कहकर ब्राह्मणका नाम और गोत्र उच्चारण करके पूर्णपात्र दे और दक्षिणा दे और आचार्य "ॐस्वस्ति" ऐसा कहे। तब ब्रह्म ग्रन्थि अर्थात् ब्रह्माकी गांठको खोले॥

ततः ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयः सन्तु इति पवित्राभ्यां जलमानीय तेन शिरः संमृज्य ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तुयोस्माऽन्द्वेष्टि यञ्चवयंद्विष्मः॥ इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम्। ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात्॥

(१) यजुर्वेद अध्याय ८ मन्त्र २१।

इसके अनन्तर 'ॐ सुमित्रियान०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पवित्रियों से जल लेकर सिरपर मार्जन करे।

मन्त्रका अर्थ—जल और औषधि हमको अत्यन्त सुख दें।

ॐ दुर्मित्रिया०इत्यादि मन्त्रसे प्रणीतापात्रको ईशान कोणमें उलट दे।

मन्त्रका अर्थ—जो लोग हमारे साथ द्वेष करते हैं और जिनके साथ हमारा द्वेष है उनको ये जल और औषधि अत्यन्त दुःख दें।

इसके बाद पूर्वोक्त आस्तरण क्रमसे अर्थात् जिस क्रमसे ये रक्खे गये थे उसी क्रमसे कुशोंको उठा घी लगा कर "देवगातु०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर हाथसे हवन करे।

ॐ देवागातुविदो गातुं वित्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देवयज्ञ ँ स्वाहा वाते धाः स्वाहा। इति बर्हिर्होमः।

उपरोक्त मन्त्रसे बर्हिका होम करे। अर्थ—हे देवता लोग! तुम यज्ञको जानने वाले हो अतएव यज्ञको विष्णुका रूप जानकर सुख-पूर्वक चले जाओ। हे अन्तर्यामिः ब्रह्म स्वरूप ःइसका फल मैं तुमको अर्पण करता हूँ और तुम इसको वायुको अर्पण कर दो।

ततः आचार्यः कुमारस्यानुशासनं करोति।

ॐ ब्रह्मचार्यसीत्याचार्यः ॐ असानीति ब्रह्मचारी। ॐ अपोशान इत्याचार्यः ॐ अशानीति कुमार आह। ॐ कर्म कुर्वित्याचार्यः ॐ करवाणीति माणवकः। ॐ मा दिवा सुषुप्स्व इत्याचार्यः ॐ न स्वापानीति कुमार। ॐ वाचं यच्छेत्याचार्यः ॐ यच्छानीति कुमारः। ॐ समिधमाधेहीत्या-चार्यः ॐ आदधानीति माणवकः।

इसके अनन्तर आचार्य इस प्रकार बालकको शिक्षा देता है। गुरु वाक्य—हे बालक! तुमने ब्रह्मचर्य धारण किया? उत्तर—हां गुरु-जी! धारण किया। गुरु वाक्य—आपोशनपूर्वक अन्न भोजन करना। बालक—गुरुजी! करूँगा। [आपोशन क्रिया यह है कि जब भोजन करनेको बैठना तो "अमृतोपस्तरणमिति" मन्त्रसे क्रमसे दक्षिणकी

ओर वाले अन्नपात्रको जलसे रक्षित करना अर्थात् हाथमें जल लेकर इस पात्रके चारो ओर फेंकना; तब "ॐ भूपतये स्वाहा" इस मन्त्रसे प्रथम ग्रास, "ॐ भुवनपतये स्वाहा" इस मन्त्रको कहकर द्वितीय ग्रास, "ॐ भूतानांपतये स्वाहा" मंत्र पढ़कर तीसरा ग्रास भूमिपर रखना और इसपर जल छोड़ना, तदनन्तर "ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा" इन पांचों मंत्रोंसे एक एक क्रमसे कहना और एक एक ग्रास भोजन करना। इसके अनन्तर पूरा भोजन करके हाथमें जल लेकर "ॐ अमृतापिधानमसि" यह मन्त्र कह कर पृथ्वी पर फेंक देना—यह क्रिया यज्ञोपवीत हो जाने पर बालकको प्रतिदिन भोजन करती समय करनी चाहिये] प्रश्न–हे बालक ब्रह्मचारीके कर्म करोगे? उत्तर–गुरुजी! करूंगा। प्रश्न–हे कुमार दिनमें नहीं सोना। उत्तर-गुरुजी! न सोऊँगा। प्रश्न—हे कुमार! वाणीको रोकना (अर्थात् व्यर्थ का वार्तालाप न करना) उत्तर–गुरुजी, रोकूंगा। प्रश्न–हे बालक हमारे अग्निहोत्रके लिये समिधा लाना। उत्तर–गुरुजी! लाऊंगा।

ब्रह्मचारीके प्रतिदिनके करने योग्य कर्तव्य याज्ञवल्क्य *स्मृतिमें लिखे हैं।

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥
गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेत् व्याहृतिपूर्विकां।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः॥
प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य त्र्यृचेनाब्दैवतेनतु।
जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्॥
सन्ध्याप्राक्प्रातरेवेहतिष्ठेदासूर्यदर्शनात्।
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि॥
ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमितिब्रुवन्।
गुरुं चैवाप्युपासीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्॥
हितं चास्य चरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।

सारांश—ब्रह्मचारीको चाहिये कि प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके सन्ध्या करे तथा गायत्रीका जप करे। सायंकाल तथा मध्याह्नके समय भी इसी प्रकार सन्ध्या और जप करे और सूर्यका उपस्थान

* अध्याय १ श्लोक २२ से २७ तक।

करे। प्रातःकाल और सन्ध्याके समय होम करे; अपना नाम लेता हुआ (मैं अमुक शर्मा हूँ कहकर) बड़ोंको नमस्कार करे और वेद पढ़नेके लिये गुरुजीकी आज्ञा ले। उनके समीपाजावे;मन, वाणी तथा शरीरसे गुरुका सदा हित चाहे।

*मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्री प्राणिहिंसनम्।
भास्करालोकनाश्लील परिवादादिवर्जयेत्॥

अर्थ—ब्रह्मचारी निम्नलिखित वस्तुका त्याग करेः—मधु (शहद) मांस, अञ्जन, जूठी कोई वस्तु, बासी भक्ष्य, स्त्री, प्राणियोंकी हत्या, सूर्य उदय तथा सूर्यास्तके समय सूर्यका दर्शन, गाली देना, दूसरोंकी निन्दा, विवाद, हठ इत्यादि।

अथाग्नेरुत्तरतः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायाचार्यचरणोपसंग्रहण पूर्वकमुपसन्नायाचार्यं समीक्षमाणायाचार्यः स्वयमपि समीक्षिताय्यस्मै निवारितशङ्खतूर्यादिशब्दइष्टांशके सावित्रीमन्वाह।

अब शिक्षा देनेके उपरान्त अग्निसे उत्तरकी ओर सामने मुँह करके आचार्यके चरणोंको हाथोंसे छूकर नम्रभावसे गुरुकी ओर देखे और शंखतूर्यादि शब्दोंको रोककर यथोचित लग्नमुहूर्त इष्ट नवांशमें आचार्य शिष्यकी परीक्षा करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे।

गायत्रीका उपदेश किस प्रकार करना चाहिये सो पद्धतियोंमें लिखा नहीं है परन्तु पारस्कर गृह्यसूत्रमें लिखा हैः—"पच्छोर्द्धर्चशः सर्वां च तृतीये नानुवर्तयन्ति"—अर्थात् आदिमें सव्याहृतिके सहित एक पाद गायत्रीका उपदेश करे; तदनन्तर अर्धोमन्त्रका उपदेश करे और तीसरी बारमें मन्त्रको पूर्ण करके उपदेश करे। प्रथमबार "ॐभूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्" ॥ द्वितीयबार "ॐ भूः ॐ भुवः ॐस्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यधीमहि"। तृतीय बार "ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं॥ भर्गो देवस्यधीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्" आपोज्योति रसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्॥

अथ गायत्रीस्वरूपमाह।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॐ।

---

* याज्ञ० स्मृति अ० १ श्लो० ३३।

पदच्छेद—ॐ भूः भुवः स्वः तत् सवितुः वरेण्यं भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात्।

अन्वय—यः (सविता) नः (अस्माकं) धियः (धर्माधर्मविवेक बुद्धयः) (प्रेरयित) तत् (तस्य) सवितुः (सूर्यस्य ब्रह्मणः दैदीप्यमानस्य) वरेण्यं (उत्कृष्टं) भजनीयम् भूरादिसप्तलोकप्रकाशकं आपः स्वरूपम् ज्योतिः स्वरूपं तथा आनन्दस्वरूपं अमृतं (मोक्षरूपं) भूर्भुवः स्वरूपं ॐकार (प्रणव) स्वरूपं च भर्गः तेजः धीमहि (वयं) ध्यायामः।

अर्थ—सारे संसार और जन्मादिका कर्ता सूर्यनारायण जो हमारे धर्माधर्म विवेककी बुद्धिको शुभ कार्यों में प्रेरणा करता है उस दैदीप्यमान प्रकाशमान ब्रह्मस्वरूप सूर्य भगवानके परब्रह्म ज्योति स्वरूपका हमलोग ध्यान करते हैं।

गायत्रीके अर्थ इत्यादिके विषयमें जो विशेष द्रष्टव्य है सो थोड़ेमें यहाँ लिखा है जिसे पढ़कर पाठकगण अति सन्तुष्ट होंगे। स्थानाभावसे सबका भाषान्तर नहीं किया गया है।

भारद्वाज स्मृतिमें गायत्रीका अर्थ इस प्रकार संस्कृतके श्लोक तथा गद्यमें लिखा है:—

अथाहमर्थं गायत्र्याः प्रवक्ष्यामि यथातथं।
द्विजोत्तमानां सद्भक्त्या जपादीनि प्रकुर्वताम्॥
विश्वासभक्तिजननं मन्त्रैर्यज्ज्ञानमुत्तमम्।
तस्मादर्थं विजानीयाद्यत्नेन जपकृद्द्विजः॥
द्वाभ्यां विश्वासभक्तिभ्यां जपादीनां महत्तरम्।
फलं भवेज्जपकृतमिति वेदेषु भाषितम्॥
पदानि दशमन्त्रस्य तदादीनि यथाक्रमात्।
पदंप्रत्यर्थनिष्पत्तिः स्पष्टंतुक्रियतेऽधुना॥

तत् = अनेक जगदुत्पत्ति स्थितिलयकारणीभूतमुपकथ्यमानं निरुपमं तेजः सूर्यमण्डलाभिधेयं परं ब्रह्माभिधीयते। सवितुः = सर्वस्यभूतजातस्य प्रसवितुरित्यर्थः। वेरण्यं = वरणीयं, प्रार्थनीयं नियमादिभिरपगतकल्मषैः सततं ध्यायेत्। भर्गः = भजतां पापभञ्जनहेतुभूतम्; तेजः देवस्य = वृष्टिदानादिगुणयुक्तस्य निरतिशयस्येत्यर्थः दीप्यतेः प्रकाशार्थत्वात्। धीमहि = मध्येचिन्तयामि, निगमनिरुक्त विधारूपेण चक्षुषायोसावादित्यो हिरण्मयः पुरुषः सोहमिति चिन्तयामि। धियः = बुद्धयः। यः = यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यमस्माभिरभिध्यातम्

भर्गो जपतां पापभञ्जनहेतुभूतं धीमह्युपास्महे। नः = अस्माकं (धियः) बुद्धिः श्रेयस्करेषु। प्रचोदयात् = प्रेरयेत् ॥

एषा व्याख्या तु गायत्र्याः सर्वपापप्रणाशिनी।
विज्ञातव्या प्रयत्नेन द्विजैःसर्वशुभेच्छुभिः॥
जपस्याभ्यन्तरे व्याख्या स्मर्तव्या मनसा द्विजैः।
स्मरणात्सर्वपापानि प्रणश्यन्ति न संशयः॥

अथ प्रत्यक्षरं देवताभेदं कथ्यते।

आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकं।
तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वैद्युतं तथा॥
पञ्चमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते।
बार्हस्पत्यं सप्तमंतु पार्जन्यमष्टमं विदुः॥
ऐन्द्रं तु नवमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा।
पौष्णमेकादशंप्रोक्तं मैत्रावरुण द्वादशम्।
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवंतु चतुर्दशम्।
मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम्॥
सप्तदशं त्वाङ्गिरसं वैश्वदेवमतःपरम्।
आश्विनंचैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम्॥
सर्वं देवमयं प्रोक्तमेकविंशमतः परम्।
रौद्रं द्वाविंशकं प्रोक्तंत्रयोविंशंतु ब्राह्मकम्॥
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता ह्यक्षरदेवताः।
जपकालेतुसंस्मृत्य तासां सायुज्यतां व्रजेत्॥

छन्द शास्त्रमें ६ अक्षरके पादवाले वृत्तको गायत्री छन्द कहा है। इस मन्त्रमें २४ अक्षर हैं और इनका चार पाद हुआ और प्रत्येक पादमें ६ अक्षर हैं। ऐसे छन्द अनेक हैं, पर यही गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि "गायन्ते त्रायते यस्मात् गायत्रीयं ततः स्मृता" "यह गाई जाती है और हम लोगोंकी रक्षा करती है अतएव इसका नाम गायत्री है।

याज्ञवल्क्य ऋषिने गायत्रीकी प्रशंसा निम्नलिखित श्लोकोंमें लिखी है—

गायत्री चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत्।
वेदा एकत्र सङ्गास्तु गायत्री चैकतः स्थिता॥

सारभूतास्तु देवानां गुह्योपनिषदोस्मृताः ।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ॥
ॐ कारपूर्विकास्तिस्रो गायत्रीं यश्च विन्दति ।
चरितं ब्रह्मवर्चस्य सवै श्रोत्रिय उच्यते ॥
एतयाज्ञातयासर्वं वाङ्मयं विदितं भवेत् ।
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम् ॥
एवं यस्तु विजानाति गायत्रीं ब्राह्मणस्तु सः ।
अन्यथा शूद्रधर्मास्याद्वेदानामपि पारगः ॥

ऋष्यश्टङ्ग ऋषि इस प्रकार कहते हैं—

सर्वात्मना हि या देवी सर्वभूतेषु संस्थिता ।
गायत्री मोक्षहेतुर्वै मोक्षस्थानमलक्षणम् ॥

कूर्म पुराणमें गायत्रीकी यों प्रशंसा की गई है—

गायत्री देवजननी गायत्री पापनाशिनी ॥
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञानमुच्यते ।
गायत्री देवजननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति देवि चेह च पावनम् ॥
हस्तप्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः ॥

बृहदारण्य उपनिषद्में इस प्रकार गायत्रीकी प्रशंसा लिखी है—
भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराणि अष्टाक्षरं हवा एकं गायत्र्यै पदमेतदुहैवास्या एतत् स यावदेषु लोकेषु तावद्धजयतियोऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ १ ॥ ऋचोयजूंषि सामानि इति अष्टावक्षराणि अष्टाक्षरं वा एकं गायत्र्यै पदमेतदुहैवास्या एतत् सयावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ २ ॥ प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराणि अष्टाक्षरं हवाएकं गायत्र्यै पदमेतदुहैवास्या एतत् सयावदिदं प्राणितितद्धैजयतियोऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ ३ ॥ अथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजाय एष तपति यद्वै चतुर्थं मत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृशे इव एष परोरजा इति सर्वं ह्येष रज उपर्युपरि तपति एवं हैषश्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ ४ ॥ सैषा गायत्री एतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठितेत्यादि ॥५॥ एतद्वैतत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणोवै बलं तत् प्राणे प्रतिष्ठितमित्यादि । साहैषा गयास्तत्रे प्राणावै गयास्तान् प्राणांस्तत्रे यस्मादगयां स्तत्रे तस्मात्

गायत्री नाम ॥ ६ ॥ सयामे वाभुमन्वाह वैषसोस यस्मा अन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते ।

छान्दोग्य उपनिषद्में इस प्रकार लिखा है :—

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च । वाग्वै गायत्री वाग्वाइदं सर्वं भूतं गायतिच त्रायतेच ॥ १ ॥ या वै सा गायत्रीयं वा वसायये पृथिवी अस्यां हीदं सर्वं भूतं प्रतिष्ठितं एतामेव नातिशीयनो ॥ २ ॥ या वै सा पृथिवीयं वा वसा यदिदमस्मिन् पुरुषे शरीरं अस्मिन् ही मेप्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशयन्ते ॥ ३ ॥ यद्वैतत् पुरुषे शरीरमिदं वावतत् यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयम् अस्मिन् ही मे प्राणाः प्रतिष्ठिताः एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥ सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम् ॥ ॥ ५ ॥

भाष्यकारोंने गायत्रीके अर्थ इत्यादिके विषयमें यों लिखा है।

शाङ्करभाष्यमें (श्रीशङ्कराचार्यने) इस प्रकार लिखा है —

एतावानस्य गायत्र्याख्यस्य ब्रह्मणः समस्तस्य महिमा विभूतिविस्तारः यावान् चतुष्पाद् षड्विधश्च ब्रह्मणो विकारः पादः गायत्रीति व्याख्यातः। अतस्तस्माद्विकारलक्षणात् गायत्र्याख्यात् ततो ज्यायान् महत्तरश्च परमार्थ सत्यरूपोऽधिकारः पुरुषः सर्वंपूरणात् पूरिशयनाच्च। तस्यास्य पादाः सर्वाः सर्वाणि भूतानि तेजो बन्नादीनिसस्थावरजङ्गमानि। त्रिपाद् त्रयः पादा अस्य सोऽयं त्रिपाद् अमृतं पुरुषाख्यं समस्तस्य गायत्र्यात्मकस्य दिविद्योतनवति स्वात्मन्यवस्थितमित्यर्थः।

महीधर भाष्यकारने गायत्रीका अर्थ इस प्रकार लिखा है —

तदितिषष्ठ्यर्थे। तस्य द्योतनात्मकस्य सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानानन्दस्वभावस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा आदित्यान्तरपुरुषस्य वा ब्रह्मणो वरेण्यं वरणीयं सर्वैः प्रार्थनीयं भर्गः सर्वपापानां सर्वसंसारस्यच भजनसमर्थं च तेजः सत्यज्ञानादि वेदान्तप्रतिपाद्यं वयं धीमहि ध्यायामः इति।

सायनभाष्यमें गायत्रीका अर्थ इस प्रकार किया गया है—

यः सविता देवः नः अस्माकं धियः धर्मादिविषया बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत् तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्य आत्मभूतं

वरेण्यं सर्वैरुपास्य तया ज्ञेय तया च सम्भजनीयं भर्गः अविद्या तत् कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयं ज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि।

माधवाचार्यने गायत्रीका अर्थ इस प्रकार किया है:—

यः सविता सूर्यो धियः कर्मणि प्रचोदयात् प्रेरयेत् तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सर्वैरैश्यतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः संभजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजः धीमहि ध्येयतमा मनसा धारयेम इति।

याज्ञवल्क्यजीने इस प्रकार कहा है:—

तत् शब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः। उदाहृते तु तच्छब्दे तच्छब्दः स्यादुदाहृतः॥ सविता सर्वभूतानां सर्वभावान्प्रसूयते। सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥ दीव्यते क्रीडते यस्मादुच्यते शोभते दिवि। तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदेवतैः॥ योनःचिन्तयामो वयं भर्गं धियो यो नः प्रचोदयात्। धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तिः पुनः पुनः। भृसज्पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयते ह्यसौ॥ भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगच्चान्ते हरत्यपि। कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः॥ भ्राजते तत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते। भेति भाजयते लोकान्रेति रंजयते प्रजाः॥ गइत्यागच्छतेऽजस्रं भरगो भर्ग उच्यते। वरेण्यं वरणीयं च जन्मसंसारभीरुभिः। आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः। जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च। ध्यानेन पुरुषो यस्तु द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले—इति॥

अब सप्तव्याहृतिका अर्थ इस प्रकार किया गया है—

भूराद्याश्चैव सत्यान्तः सप्त व्याहृतयस्तथा। लोकास्त एव सप्तैते उपर्युपरि संस्थिताः॥ सप्त व्याहृतयः प्रोक्ताः पुरा कल्पे स्वयंभुवा। तएव सप्त छंदांसि लोकाः सप्त प्रकीर्तिताः।

भवन्तिचास्मिन्भूतानि स्थावराणि चराणि च तस्माद्भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता। भूः का अर्थ।

भवन्ति भूयोलोकानि उपयोगत्वये पुनः। कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात्प्रकीर्तिता॥ भुवः का अर्थ।

शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा। आलयः सुकृतानां च स्वर्लोकः स उदाहृतः। स्वः का अर्थ।

अधरोत्तरलोकेभ्यो महांश्च परिमाणतः। हृदयं सप्तलोकानां महस्तेन निगद्यते। महःका अर्थ।

कल्पदाहो प्रलीनास्तु प्राणिनस्तु पुनः पुनः । जायन्ते च पुनः स्वर्गं जनस्तेन प्रकीर्तितः । जनः का अर्थ ।

सनकाद्यास्तपः सिद्धा ये चान्यं ब्राह्मणः सुताः । अधिकारनिवृत्तास्तु तिष्ठन्त्यस्मिंस्तपस्ततः । तपःका अर्थ ।

सत्यं तु सप्तलोका वै ब्रह्मणः सदनं ततः । सर्वेषां चैव लोकानां मूर्ध्नि सन्तिष्ठते सदा । ज्ञानकर्मप्रतिष्ठानां तथा सत्यस्य भाषणात् । प्राप्यते चोपभोगार्थं प्राप्यं न च्यवते पुनः । तत्सत्यं सप्तमो लोकस्तस्माद्रूर्ध्वं न विद्यते—सत्यका अर्थ—

गायत्रीका विनियोग ऊपर नहीं लिखा गया सो लिखते हैं:—

गायत्री महामन्त्रका विश्वामित्र ऋषि है। सविता देवता है, अग्नि मुख है और इसका विनियोग उपनयनमें है।

ततः माणवकः आचार्यदक्षिणादिशि अग्निपश्चिमोपविष्टो घृताक्तशुष्कनिषिद्धेन्तरेन्धनेन जुहुयात् । ततः ॐ अग्नेसुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु ॐ यथात्वमग्नेसुश्रयः सुश्रवा असि । ॐ एवं माᳫं सुश्रयः सौश्रवसं कुरु ॐ यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपोऽसि । ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ।

अब गायत्रीका उपदेश होनेके बाद आचार्यसे दक्षिणकी ओर और अग्निसे पश्चिम दिशामें बैठकर कुमार घृतयुक्त सूखे और शुद्ध गोवर इन्धन अर्थात् परनेसे इन मन्त्रोंको पढ़ता हुवा हवन करे।

मन्त्रका अर्थ—हे अग्नि जिस प्रकार तुम सुश्रव हो (तुम्हारा नाम शुभ है) उसी प्रकार मुझे भी सुश्रव अर्थात् श्रेष्ठ कर्णवाले करो (=मैं वेद पढ़ूं और मेरे कान भी वेदध्वनि सुनकर शुद्ध हों) जिस प्रकारसे तुमको वेदके मन्त्र पढ़कर आहुति दी जाती है उसी प्रकार मुझको भी वेद पढ़नेका अधिकार दो, मैं भी वेदाध्ययन करूं। जिस प्रकारसे तुम देवोंके और यज्ञोंके अधिप (स्वामी) हो उसी प्रकार मैं मनुष्योंका तथा देवोंका रक्षक होऊँ।

ततः प्रदक्षिणमग्निं वारिणा पर्युक्ष्य उत्थाय स्वप्रादेशमितां घृताक्तपलाशसमिधमादाय ॐ अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने

समिधा समिध्यसएव महमायुषां मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममा-चार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳस्वाहा। इति मंत्रेण जुहु-यात्। एवं समिदन्तरद्वयं जुहुयात्। ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ॐ यथा-त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपोऽअसि। ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्। ततः प्रद-क्षिणमग्निं पर्युक्ष्य तूष्णीं पाणी प्रताप्य मुखं प्राति मंत्रांतेऽवमृशति।

इसके अनन्तर अग्निको जलसे प्रदक्षिणा करके हाथमें जल लेकर अग्निके चारो ओर फेंके और उठकर अपने प्रदेशमात्र (अंगूठे और तर्जनीके फैलनेके अन्तरको प्रदेश कहते हैं) पलास की समिधामें घी लगाकर "ॐ अग्नये स०" इस मन्त्रसे अग्निमें हवन करे।

मन्त्रका अर्थ—वेदोक्त फलको देनेवाले दैदीप्यमान हे अग्नि देवता! मैं आपके लिये समिधका होम करता हूँ। जिस प्रकार आप मेरे होम किये हुए समिधसे प्रज्वलित होते हैं उसी प्रकारसे मेरी आयुष्य, बुद्धि, सन्तति, तेज, गौ इत्यादि पशु ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान् हों। मेरे आचार्य्य भी बहुपुत्रवान् तथा बुद्धिमान् होवें। मैं नित्य यज्ञ करनेवाला होऊँ, मैं आयुष्माम् यशयुक्त तथा तेजस्वी होऊं, वेदाध्य-यनशील तथा अन्न देनेवाला होऊं और अन्नका अभाव मेरे पास कभी न होवे। इस कामनासे अग्निमें होम करे। इसी प्रकारके दो समिधाका होम करे। 'ॐ अग्नये०' मन्त्रका अर्थ पूर्व लिखा जा चुका है। अब आचार्य प्रदक्षिण क्रमसे अग्निका पर्युक्षण करके बिना मन्त्र

पढ़े दोनों हाथोंको अग्निपर तपाकर "ॐ तनूपा०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर कुमारके मुखको छूवे। मन्त्र नीचे लिखे हैं:—

ॐ तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि। ॐ आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि। ॐ वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि। ॐ अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण। ॐ मेधां देवः सविता आदधातु। ॐ मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु। ॐ मेधां मेऽश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ। ततः सर्वगात्रादिषु दक्षिणपाणिना स्पर्शः। अत्र प्रत्येकं मंत्रः। ॐ अंगानि च म आप्यायताम्। इति सर्वगात्रालंभनम्। ॐ वाक् च म आप्नाइतामिति मुखे। ॐ प्राणश्च म आप्यायतामिति नासिकयोः। ॐ चक्षुश्च म आप्यायतामिति चक्षुषोः ॐ श्रोत्रं च म आप्यायतामिति श्रोत्रयोः। ॐ यशोवलं च म आप्यायतामिति मंत्रपाठमात्रम्।

अर्थ—हे अग्नि! आप शरीरके रक्षक हो अतएव मेरे शरीरकी रक्षा करो। आप आयुके देनेवाले हो अतएव मुझे दीर्घायु करो। आप तेजको देनेवाले हो अतएव मुझे तेज दो। मेरे शरीरमें जो न्यूनता है उसको पूर्ण करो। सूर्य मुझको धारणाशक्ति दें, सरस्वती देवी मुझे बुद्धि दें। कमलकी मालावाले अश्विनीकुमार मुझे बुद्धि देवें। इसके अनन्तर क्रमसे निम्नलिखित मन्त्रोंको पढ़ता हुआ अङ्गोंका स्पर्श करे। यथा—शरीरके अङ्ग वाणीका कारक इन्द्रिय, प्राण, वायु, चक्षु, नेत्र, कर्ण, श्रोत्र, यश और बलकी वृद्धि हो—क्रमसे सब शरीर, मुख, नासिका, चक्षु, श्रोत्र कर्ण आदि स्पर्श करे।

ततो दक्षिणकरानामिकागृहीतभस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणबाहुमूले हृदि च त्र्यायुषं कुर्यात् । तत्र यथासंख्येन मंत्रचतुष्टयम् । ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः इति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् इति दक्षिण बाहुमूले । ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् इति हृदये

इसके अनन्तर दहिने हाथकी अनामिका (कानी अंगुलीके पास वाली अंगुली) से हवन भस्म लेकर क्रमसे ललाट, गर्दन, दहिने भुजेकी जड़ तथा हृदयमें मन्त्र पढ़कर लगावे । यथा 'ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः' पढ़कर ललाटमें, 'ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्' कहकर ग्रीवामें, 'ॐयद्देवेषु त्र्यायुषम्' कहकर दहिने बाहुकेजड़में तथा 'ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्' कहकर हृदयमें भस्म लगावे ।

अर्थ—जमदग्नि, कश्यप और अन्य देवताओंकी बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था हैं सो हमारी हों ।

ततो व्यस्तपाणिभ्यां पृथिवीं स्पृशन्नभिवादनं कुर्यात् ॥ तत्र प्रकारः ॥ ॐ अमुकगोत्रोहममुकशर्माहं भो वैश्वानर त्वामभिवादये ॥ ततस्तेनैव क्रमेण संबोध्य वरुणमभिवाद्याचार्यं तथैवाभिवादयेत् । ततः आयुष्मान् भव सौम्येत्याचार्यो ब्रूयात् ॥

इसके अनन्तर बालक उलटे हाथोंसे पृथ्वीको स्पर्श करता हुवा नमस्कार करे कि—मैं अमुकगोत्र, अमुकशर्मा हे अग्नि, आपको नमस्कार करता हूँ । इसके अनन्तर इसी प्रकारसे कहते हुए वरुणदेवता तथा आचार्यको नमस्कार करे; तब आचार्य आशीर्वाद दे कि तुम दीर्घायु हो ।

ततो भिक्षापात्रमादाय प्रथमं मातुः सकाशात्

ॐ भवति भिक्षां मे देहि इति प्रार्थनानंतरं तद्दत्तां-चादायाचार्याय निवेदयेत् । तथैव भिक्षांतरं याचे-त् । तत आचार्येण भुंक्ष्वेत्यनुज्ञातो भिक्षां स्वी-कुर्यात् ततः फलपुष्पचंदनघृतपूर्णस्रुवेण ब्रह्मचारि-दक्षिणकरस्पृष्टेनाचार्यः पूर्णाहुतिं दद्यात् । तत्र मंत्रः । ॐ मूर्द्धानंदिवोऽअरतिं पृथिव्यावैश्वानरमृ-तऽआजातमग्निम् । कवि ँ सम्राजमतिथिं जना-नामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा : इदमग्नये । ततः स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभ-स्मना ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः इति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् इति हृदि । कुमारपक्षे तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः ।

इसके अनन्तर ब्रह्मचारी भिक्षापात्र लेकर पहले मातासे भिक्षा मांगे, तब अन्य स्त्रियोंसे मांगे और यह वाक्य कहे "भवति भिक्षां मे देहि" अर्थात् आप मुझे भिक्षा दीजिये । इनकी दी हुई भिक्षा लेकर आचार्यको दे । इसी प्रकार और लोगोंसे भी भिक्षा मांगे । इसके अनन्तर जब आचार्य कहे कि तुम भिक्षाको अंगीकार करो तब ब्रह्मचारी भोजन करे, इसके बाद ब्रह्मचारी अपने दहिने हाथमें स्रुवा

---

(१) भवत्पूर्वं ब्राह्मणो भिक्षेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदन्त्यां वैश्य इति पारस्कर गृह्यसूत्रे ।

(२) यजुर्वेद अध्याय ७ मन्त्र २४.

लेकर फल, पुष्प चन्दन और घी लेकर आचार्य तब पूर्णाहुति करावे। निम्नलिखित मन्त्र पढ़े।

अथ क्षारलवणमधुमांसादिनिवृत्तिः उद्धृतजल स्नानदंडकृष्णाजिनधारणवृक्षारोहण विषमभूमिलं- घननग्नस्त्रीनिरीक्षणस्त्रीसंभोगव्यसनव्यावृत्तिरूपा ब्र- ह्मचारिणो नियमाः। तद्दिने वाग्यतो ब्रह्मचारी अहः शेषं स्थित एव गमयेत्। ततः सायंसंध्यां कृत्वा तस्मिन्नेवाग्नौ पूर्ववत्पर्युक्षणपरिसमूहने कृत्वा वाचं विसृजेत् परिसमूहनांते शुष्कनिषिक्तेतरेन्धन- स्याग्नौ प्रक्षेपः। ततः संध्यामुपास्य प्रतिदिनं सायं प्रातरपि ब्रह्मचारिणा कर्तव्या इति॥

इसके अनन्तर खारी वस्तु (क्षार) नोन, मधु, मांस इत्यादिका प्रयोग न करना, और (किसी तडाग, कूप इत्यादिसे) जल निकाल कर स्नान करना। दण्ड और काले मृगका चर्म धारण करना। वृक्ष पर चढ़ना, ऊंची नीची भूमि पर कूदना, नंगी स्त्री देखना, स्त्री संग करना, जुवा इत्यादि व्यसन ब्रह्मचारीको न करना चाहिये—ये ब्रह्म- चारीके नियम हैं। उसदिन ब्रह्मचारी मौन व्रत धारण किये रहे बाकी दिन खड़े खड़े बितावे तब सायंकालकी सन्ध्या करे और उसी अग्नि में पूर्ववत् पर्युक्षण और परिसमूहन करके मौनव्रत तोड़े अर्थात् तब बोलने लगे। इसके अनन्तर परिसमूहनके अन्तमें अग्निमें सूखा और अच्छा ईंधन लगावे। फिर सन्ध्योपासन करके प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल ब्रह्मचारीको नियमसे सन्ध्या करनी चाहिये।

---

(१) मधुमांसं जनोच्छिष्ट भुक्त स्त्री प्राणिहिंसनम्। भास्करा लोकनाश्लील परिवादादि वर्जयेत्। या० स्मृति।

(२) नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयश्च पश्चिमाम्। सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वं- स्माद्द्विज कर्मणः।

अथ वेदारम्भः ।

तत्र कृतनित्यक्रियः आचार्यः कुशैर्हस्तमात्र-परिमितां भूमिं परिसमुह्य तान् कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेनस्फ्येन वा उत्तरोत्तरतः प्रागग्रप्रादेशमात्रं त्रिरुल्लिख्य उल्ले-खनक्रमेणानामिकांगुष्ठाभ्यांमृदमुद्धृत्यजलेनाभ्युक्ष्य कांस्येनाग्निमानीयाभिमुखमुपसमाधाय पुष्पचंदन-तांबूलवस्त्राण्यादाय ॐअद्य कर्तव्यवेदारंभहोमकर्म-णि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममु-कशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनतांबूलवासोभिर्ब्रह्म-त्वेन त्वामहं वृणे इति ब्रह्माणं वृणुयात्। ॐ वृतोस्मी-ति प्रतिवचनम् ॐ यथाविहितं कर्म कुर्वित्याचार्यः ।

इसके अनन्तर वेदारम्भ कृत्य प्रारंभ किया जाता है। आचार्य नित्यक्रिया (सन्ध्योपासन इत्यादि) करके हाथ २ भर लम्बे कुशोंसे पृथ्वी साफ करके और इन कुशाओंको ईशान कोणमें फेंककर गोबर और जलसे लीप करके स्रुवाके जड़से अथवा (स्फ्य) यज्ञपात्रसे सामने उत्तरकी ओर प्रदेशमें तीन रेखा करके और जिस क्रमसे रेखा खींची हैं उसी क्रमसे अनामिका और अङ्गुष्ठसे मिट्टी निकालकर जल छिड़कर कांसेके पात्रमें रखकर अग्नि लाकर अपने सामने स्थापन करे। इसके अनन्तर पुष्प, चन्दन ताम्बूल और वस्त्र लेकर "ॐअद्यक०" इत्यादि सङ्कल्प करे। तब ब्राह्मण" "ॐवृतोस्मि" कहे, "ॐयथाविहितं कर्म कुरु" आचार्य कहे "तुम शास्त्रोक्त कार्य करो।"

---

१ कुशकंडिका प्रयोग पूर्व लिखा जा चुका है। यहांसे " इत्याज्यभागौ " तक कुशकंडिक विधान कहलाता है।

ओं करवाणीति तेनोक्ते अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य ब्रह्माणमभिप्रदक्षिणक्रमेण आमयित्वा अस्मिन् कर्मणि त्वम्मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय । ओं भवामीति तेनोक्ते ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्य । प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा । वारिणा परिपूर्य । कुशैराच्छाद्य । ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतःकुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरणम् बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तंब्रह्मणोग्निपर्यंतं नैर्ऋत्याद्वायव्यांतम् अग्नितः प्रणीतापर्यंतम् । ततोग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रसनंतर्गर्भंकुशपत्रद्वयम् प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली संमार्जनकुशाः उपयमनकुशाः समिधास्तिस्रः स्रुवः आज्यम् पूर्णपात्रम् पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम् । ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय द्वाभ्यामनामिकांगुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनम् । ततः प्रोक्षणीपात्रं वामहस्ते गृहीत्वा दक्षिणहस्तानामिकांगुष्ठाभ्यां त्रिरुद्दिंगनम् । ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रमभ्युक्ष्य प्रोक्षणीजलेन यथासाधितवस्तून्यभिषिच्या-

ऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् । तत आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्याधिश्रमणम् । ततः कुशं प्रज्वाल्याज्यस्याग्नेश्चोपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा अग्नौ तत्प्रक्षेपः ततस्त्रिः स्रुवप्रतपनं संमार्जनकुशानामग्रैरंतरतो मूलैर्बाह्यतःस्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात् । तत आज्यमाग्निप्रदक्षिणं भ्रामयित्वाऽवतार्याग्रे निदध्यात् ततः आज्यस्य प्रोक्षणीवदुत्पवनं अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं ततः प्रोक्षण्युत्पवनम् । तत उत्थायोपयमनकुशानादाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधास्तिस्रः क्षिपेत् । तत उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय ब्रम्हणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ जुहुयात् । तत्र प्रथमाहुतिचतुष्टयेन स्रुवावास्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० इति मनसा ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिंद्राय०इत्याघारौ[1] ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये० ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय० इत्याज्यभागौ[2] ।

---

१ आघार आहुति वेदीके वायव्य कोण से अग्निकोण तक स्रुवाके धारसे होती है ।

२ आज्य भाग आहुति वेदीसे नैर्ऋतिकोणसे ईशानकोण तक स्रुवाके घृतकी धारसे होती है ।

ततः प्राकृतोऽनन्वारब्धकर्तृको होमः । ॐ अंतरिक्षाय स्वाहा इदमंतरिक्षाय० ॐ वायवे स्वाहा इदं वायवे० ॐ ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे० ॐ छंदोभ्यः स्वाहा इदं छंदोभ्यः०। एताः सामान्याहुतयः। ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० इति मनसा ॐ देवेभ्यः स्वाहा इदं देवेभ्यः० ॐ ऋषिभ्यः स्वाहा इदं ऋषिभ्यः० ॐ श्रद्धायै स्वाहा इदं श्रद्धायै० ॐ मेधायै स्वाहा इदं मेधायै० ॐ सदसस्पतये स्वाहा इदं सदस्पतये० ॐ अनुमतये स्वाहा इदमनुमतये०।ततोन्वारब्धकर्तृको होमः तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः। ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये० ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे० ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय०। एता महाव्याहृतयः। ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठा ऽ यजिष्ठो वाह्नितमऽ शोशुचानो विश्वाद्वेषाऽ सिप्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा इदमाग्नि वरुणाभ्याम्०। सत्वन्नो अग्नेत्रमोभवोतीनेदिष्ठो अस्या उषसोव्युष्टौ अवयत्त्वनो वरुणऽ रराणो व्वीहि मृडीकऽ सुहवो नएधि स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्याम् ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्यमयाअसि ॥ अयानोयज्ञंवहास्ययानोधेहिभेषजऽ स्वाहा। इदमग्नये०। ॐ ये ते शतं वरुण

ये सहस्रं याज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नो ऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चतु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यःस्वर्केभ्यश्च। ॐ उदुत्तमं वरुण पाश मस्मदवाधमं विमध्यम ँ श्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽअदितये स्यामस्वाहा। इदं वरुणाय०। इति सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये० इति मनसा। इति प्राजापत्यम्। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते० इति स्विष्टकृद्धोमः।

इसके अनन्तर विना अन्वारब्धके हवन करना चाहिये। 'ॐ अन्तरिक्षाये०' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़ कर ये आहुतियां अन्तरिक्ष, वायु, ब्रह्म और छन्द अर्थात् वेदोंके निमित्त हैं। सामान्य आहुतियां 'ॐ प्रजापतये०' मनमें कहना चाहिये। इसके अनन्तर देव, ऋषि, श्रद्धा, मेधा, सदसस्पति और अनुमति ये आहुतियां विना अन्वारब्ध के हवन करना चाहिये। इसके अनन्तर अन्वारब्ध सहित हवन करना चाहिये। 'त्वन्नो अग्ने०' इस मन्त्रका अर्थ पूर्व लिखा जा चुका है। भूः इसका अधिष्ठाता देवता अग्नि है; भुवः का वायु और स्वः का सूर्य है।

ततःसंस्रवप्राशनम्। तत आचम्य ॐ अद्य कृतैदद्वेदारंभहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामु-

---

१ यजुर्वेद अध्याय २ मन्त्र २.

कशर्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे इति दक्षिणां दद्यात्। ॐस्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततो ब्रह्मग्रंथिंविमोकः। ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः संतु इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य। ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै संतु योस्मिन्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः इति मंत्रेण ऐशान्यां प्रणीतां न्युब्जी कुर्यात्। ततः स्तरणक्रमेण वर्हिरानीय घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात्। ॐ देवागातुविदोगातुंवित्वागातुमितमनस्पत। इमं देवयज्ञ ँ स्वाहा। व्वातेधाः स्वाहा। इति वर्हिहोमः।

तब संश्रव प्राशन करना अर्थात् स्रुवामेंसे प्रोक्षणी पात्रसे चुवे हुए घीको चाटना। तब आचमन करके यह संकल्प करे और ब्राह्मणको दक्षिणा दे। तब ब्राह्मण कहे "स्वस्ति"। तब ब्रह्म * ग्रन्थिको खोले। 'ॐ सुमित्रिया०' इस मन्त्रको पढ़कर पवित्राओंमें प्रणीताका जल लेकर सिरपर मार्जन करे। फिर "ॐ दुर्मित्रिया०" इस मन्त्रको पढ़कर ईशान दिशामें प्रणीताको उलट दे। तब स्तरण क्रमसे वर्हिको लाकर घृत लगाकर हाथसे हवन करे और "ॐ देवगातु०" इत्यादि मन्त्र पढ़े।

ततः काश्मीरगमनम्। तत इष्टांशके वेदारंभं गुरुः कारयेत्। तत्र क्रमः। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचो-

---

* जहां वेदकर्म प्रवीण श्रोत्रिय ब्राह्मण न हों तहां कुशाका ब्रह्मा बना कर आवाहन करे और इस स्थानपर उस कुशाकी ग्रन्थि खोले। यह ब्रह्मा ५० कुशोंका बनाना चाहिये।

दयात् ॐ इति प्रणवांतं पठित्वा। पंक्तिं नमस्कारं च कारयित्वा। ॐसमिधाग्निंदुवस्यतघृतैर्बोधयतातिथिंअस्मिन्हव्याजुहोतन। ॐ सुसमिद्धायशोचिषे०। इति कंडिकांतरं वा फक्किकां वा पाठयेत्।

तब काश्मीरका गमन करना। इसके अनन्तर शुभ नवांशमें आचार्य बालकको वेद पढ़ावे। इसका यह क्रम है कि गायत्रीके आदि और अन्तमें प्रणव अर्थात् ॐ कार लगा कर पढ़ावे और बालकसे वेदकी पंक्तिको नमस्कार करवाकर इसके अनन्तर ॐ समिधाग्नि—इषेत्वोर्जेत्वा—"अग्निमीळे पुरोहितं० शन्नो देवी०" इत्यादि काण्डिका पर्यन्त अथवा फक्किका पर्य्यन्त पढ़ावे।

ततः सप्रणवं स्वस्ति वाचयित्वा उत्थाय फलपुष्पसमन्वितब्रम्हचारिदक्षिणकरस्पृष्टेन घृतपूर्णेन पूर्णाहुतिं दद्यात्। ॐ मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निं कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयंत देवाः स्वाहा इतिपूर्णाहुतिः।

इसके अनन्तर प्रणव सहित स्वस्ति (अर्थात् ॐ स्वस्ति) कहला कर और खड़े होकर फल और पुष्प लेकर ब्रह्मचारीके दहिने हाथसे छुवा हुआ घृतसे पूर्ण स्रुवासे "ॐ मूर्धानं०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पूर्णाहुति दे।

मन्त्रका अर्थ—ॐ मूर्धानं० इस मन्त्रके भारद्वाज ऋषि हैं, वैश्वानर देवता और त्रिष्टुप् छन्द है और पूर्णाहुतिमें इसका विनियोग है। हम उस परमेश्वरको यह पूर्णाहुति देते हैं जो स्वर्ग इत्यादि लोकोंसे ऊपर है, जो पृथ्वी इत्यादि पञ्चतत्व (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश) से परे है, जो सब ब्रह्माण्डको देदीप्यमान करता है, सत्य रूप और जन्म इत्यादिसे रहित है। निर्विकार सर्वप्रकाश, सर्वज्ञ और आनन्द रूप है तीनों कालसे रहित और जो उत्पत्ति तथा प्रलयमें प्राप्ति मात्रका पात्ररूप है और जो सब देवताओंको उत्पन्न करता है।

ततः उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ॐ त्र्यायुषंजमदग्नेरिति ललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्। ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले। ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषमिति हृदि। अनेनैव क्रमेण ब्रह्मचारिललाटादावपि तत्र तत्ते इति विशेषः। इति वेदारंभः।

इसके अनन्तर बैठकर स्रुवाकी पेंदीमेंसे भस्म दहिने हाथकी अनामिकामें लगा कर 'ॐत्र्यायुषं०' कह कर ललाटमें, 'ॐकश्यपस्य०' कह कर ग्रीवामें, 'ॐयद्देवेषु०' कह कर दक्षिण बाहुके मूलमें, 'ॐतन्नो०' कह कर हृदयमें लगावे। इसी क्रमसे ब्रह्मचारीके भी ललाट इत्यादिमें लगावे। यहां वेदारम्भ क्रिया समाप्त हुई।

अथ समावर्तनम्। तत्र शुभे दिने प्रह्वीभूय आचार्य्यं स्नास्यामीति कुमार आचार्य्यं भाषते तत्र स्नाहीत्याचार्य्यः। ततो ब्रह्मचारिणि आचार्य्यसान्निहितदक्षिणदिशि उपविष्टे कृतस्नानादिराचार्य्यः कुशैर्हस्तमात्रां भूमिं परिसमुह्य तानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेनोत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणोद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य कांस्येनाग्निमानीय प्रत्यङ्मुखं निदध्यात्। ततः पुष्पचंदनतांबूलवासांस्यादाय ॐ अद्यामुकस्य कर्तव्यसमावर्तनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचं-

दनतांबूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोस्मीति प्रतिवचनम्। यथाविहितं कर्म कुर्वित्यभिधाय ॐ करवाणीति तेनोक्ते। अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्वा तदुपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य्याऽस्मिन्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय। ॐ भवानीति तेनोक्ते। ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्य। ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतःकुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणम्। बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानांतं ब्रह्मणोऽग्निपर्यंतं नैर्ऋत्याद्वायव्यांतं अग्नितः प्रणीतापर्यंतम्। ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्। पवित्रकरणार्थं साग्रमनंतर्गर्भकुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रम्। आज्यस्थाली संमार्जनार्थं कुशाः उपयमनकुशाः। समिधास्तिस्रः स्रुवः आज्यम्पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम्। ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधायानामिकांगुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पूय प्रोक्षणीपात्रं वामकरेणादायानामिकांगुष्ठगृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किंचित्त्रिःप्रक्षिप्य। प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीमभ्युक्ष्य प्रोक्षणीजलेन यथाऽऽसादितवस्तून्यभिषिच्याग्निः

प्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् । तत आज्य-
स्थाल्यामाज्यनिर्वापः । अधिश्रयणम् । ततस्तृणं
प्रज्वाल्याज्यस्याग्नेश्चोपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा
वह्नौ तत् प्रक्षिप्य स्रुवं त्रिःप्रतप्य संमार्जनकुशा-
नामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं सम्मृज्य प्रणीतोदके-
नाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्वस्य दक्षिणे निदध्यात् ।
तत आज्यमग्निं प्रदक्षिणं भ्रामयित्वाऽवतार्य त्रिः
प्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं कृत्वा
पुनः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनम् । तत उत्थायोपयमन-
कुशान्वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा
तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः क्षिपेत् । तत
उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमे-
णाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातित-
दक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ ब्रह्मणान्वारब्धः स्रुवे-
णाज्याहुतीर्जुहुयात् । तत्र प्रथमाहुतिचतुष्टये
प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणी-
पात्रे प्रक्षेपः ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये०।
इति मनसा । ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिंद्राय०।
इत्याघारौ। ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये०। ॐ सोमाय
स्वाहा इदं सोमाय०। इत्याज्यभागौ । ततोऽन्वन्वार-
ब्धकर्तृकहोमः । ॐ अंतरिक्षाय स्वाहा । इदमंत-

रित्ताय०। ॐ वायवे स्वाहा। इदं वायवे०। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा इदंब्रह्मणे०। ॐछंदोभ्यः स्वाहा इदंछंदोभ्यः०। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये० इति मनसा। ॐदेवेभ्यः स्वाहा इदं देवेभ्यः०। ॐ ऋषिभ्यः स्वाहा इदं ऋषिभ्यः०। ॐ श्रद्धायै स्वाहा। इदं श्रद्धायै०। ॐ मेधायै स्वाहा। इदं मेधायै०। ॐ सदसस्पतये स्वाहा। इदं सदसस्पतये०। ॐ अनुमतये स्वाहा इदमनुमतये०। ततो ब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात् अत्राहुतिदशतये तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थिताज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः। ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये०। ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे०। ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय०। एता महाव्याहृतयः। ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्यहेडोअवयासिसीष्ठाः यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषा ँ सिप्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्याम्। ॐ सत्वन्नोअग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोअस्याउषसोव्युष्टौ। अवयक्ष्वनोवरुण ँ रराणोवीहिमृडीक ँ सुहवोनएधि स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्याम्। ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्वमयाअसि अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज ँ स्वाहा इदमग्नये०। ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा

वितता महांतः तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुंचंतु मरुतः स्वर्काः स्वाहा इदं वरुणाय० सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च। ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यम ँश्रथाय-अथाव्वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणाय०। इति सर्वप्रायश्चित्तम्। ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० इति मनसा। इति प्राजापत्यम् । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इद-मग्नये स्विष्टकृते०। इति स्विष्टकृत ततः संस्रवप्राश-नम् । तत आचम्य ॐ अद्य कृतैतत्समावर्तनहो-मकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे। इति दक्षिणां दद्यात् । ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः। ततः पवित्राभ्यां प्रणीता जलेन ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयस्संतु इति मंत्रेण शिरः संमृज्य । ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै संतु यो-स्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः इति मंत्रेणैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् । ततः स्तरणाक्रमेण बर्हिरा-नीय घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात् । ॐ देवा गातुविदो यातुं वित्वा गातुमितमनसस्पत इमं देव-

यज्ञ ँ स्वाहा व्वातेधाः स्वाहा इति बर्हिर्होमः ।

अब वेदारम्भके बाद समावर्तन संस्कार लिखा जाता है। समावर्तन संस्कार उसको कहते हैं कि जब वेद पढ़ लेने के बाद ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञा पाकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहता है, तब जो स्नान इत्यादि कर्म करना है वह इसी कृत्यका भाग है। इसी कारण-से ब्रह्मचर्य आश्रमसे गृहस्थाश्रममें आनेवालेको स्नातक भी कहते हैं। पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुसार पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करनेकी अवधी ४८ वर्ष है यथा "अष्टचत्वारिंशद्वर्षाणि वेद ब्रह्मचर्यं चरेत् द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदं यावद्ग्रहणं वेति" अर्थात् ४८ वर्षतक वेद पढ़े और ब्रह्मचर्य धारण करे। अर्थ—एक वेद १२ बारह वर्ष पढ़ कर अथवा तब तक ब्रह्मचर्य धारण करे जब तक वेदाध्ययन न हो जाय। मनुजीका वाक्य है "षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्। तदार्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा" ।

स्नातक तीन प्रकारके होते हैं:—(१) विद्यास्नातक अर्थात् वे ब्रह्मचारी जो तीव्रबुद्धिके कारण शीघ्र ही वेदाध्ययन समाप्त करके ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवेश करते हैं। (२) व्रतस्नातक अर्थात् वे जो केवल ब्रह्मचर्यका व्रत समाप्त करके ही और बिना वेदाध्ययन पूर्ण किये ब्रह्मचर्य त्याग कर गृहस्थ बने। (३) विद्याव्रत स्नातक अर्थात् वे ब्रह्मचारी जो वेदको भी समाप्त करें और ब्रह्मचर्यकी अवधि भी समाप्त करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करें।

अब यदि चार वेद न पढ़ सके तो अपनी शाखाका ही वेद पढ़े। यदि वह भी पूरा न हो सके तो संहिता ही पढ़े। यदि यह भी असम्भव हो तो नित्यकर्म सन्ध्या इत्यादि अपने वर्णकी अवश्य करना चाहिये।

समावर्तनमें विधि यह है कि किसी शुभ दिनमें ब्रह्मचारी बालक नम्र होकर अपने गुरुके पास जावे और विज्ञापना करे कि मैं स्नान करूंगा। तब आचार्य कुमारसे कहे " जा तू स्नान कर"। इसके अनन्तर आचार्यके पास दक्षिण दिशामें ब्रह्मचारी बैठे और आचार्य भी स्नान इत्यादि करके हाथ हाथ भर के कुशा से भूमि झाड़े, पूर्व-की तरह कुशकुण्डिका इत्यादि करे जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है पुनः यहां नहीं किया जाता।

ततो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृ कर्म्म ततोऽग्निपश्चिमोपविष्टो ब्रह्मचारी परिसमूहनं कुर्यात्। तत्र घृताक्तशुष्कनिषिद्धेतरेंधनेन पंचाहुतीर्हस्तेनैव जुहुयात्। ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु। ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ॐ एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्। ततःप्रदक्षिणमग्निं वारिणा पर्युक्ष्य उत्थाय घृताक्तां प्रादेशमितसमिधमादाय जुहुयात्। तत्र मंत्रः। अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिधा समिध्य स एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिंधे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा। ततः समिदंतरद्वयमनेनैव क्रमेण प्रत्येकं हुत्वा उपविश्य तेनैव क्रमेण पंचाहुतीर्घृताक्तशुष्कनिषिद्धेतरेंधनेन जुहुयात्। ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु। ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ॐ एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्यनिधिपा असि। ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्। ततः प्रदक्षिणमग्निं वारिणा पर्यु-

न्द्य तूष्णीं पाणी प्रताप्य मुखं प्रतिऽमंत्रांतेवमृशति। ॐ तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि। ॐ आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि। ॐ वर्च्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि। ॐ अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण। ॐ मेधां मे देवः सविता आदधातु। ॐ मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु। ॐ मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ। तत्र सर्वगात्रादिषु दक्षिणपाणिना स्पर्शः। तत्र प्रत्येकं मंत्रः। ॐ अंगानि च म आप्यायताम्। इति सर्वगात्रालंभने। ॐ चक्षुश्च म आप्यायतामिति चक्षुर्द्वयस्पर्शः। ॐ श्रोत्रं च म आप्यायतामिति श्रोत्रद्वयस्पर्शः। ॐ यशोबलं च म आप्यायतामिति मंत्रपाठमात्रम्। ततो दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणबाहुमूले हृदि च त्र्यायुषं कुर्यात् यथासंख्येन मंत्रचतुष्टयम्। ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् इति ग्रीवायाम्। ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् इति दक्षिणबाहुमूले। ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् इति हृदि।

बर्हि हवनके अनन्तर अन्वारब्ध कर्म करना चाहिये। इसके बाद अग्निसे पश्चिम दिशामें बैठकर ब्रह्मचारी परिसमूहन कर्म करे। अर्थात् सुन्दर सूखे समिधाको घीमें बोरकर अपने हाथसे 'ॐ अग्ने०' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़ पढ़ कर पांच आहुतियाँ दे। इन मन्त्रोंकी व्याख्या पहले हो चुकी है।

ततो व्यस्तपाणिभ्यां पृथिवीं स्पृशन् प्रथमं वैश्वानरं संबोध्याभिवादयेत् । तत्रामुकगोत्रोहममुकप्रवरोहममुकशर्माहं भो वैश्वानर त्वामभिवादये इति प्रकारः ।

इसके अनन्तर अलग अलग दोनों हाथोंसे पृथ्वीको छूकर कुमार अग्निको संबोधन करके प्रणाम करे। यथा वह कहे कि—हे अग्नि! अमुक गोत्र, अमुक प्रवर और अमुक शर्मा मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

ततस्तथैव वरुणं संबोध्याभिवादयेत् । तथैवाचार्यं चाभिवादयेत् । ततः आयुष्मान् भव सौम्य इत्याचार्यो ब्रूयात् । ततोऽग्नेरुत्तरतः प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य तदुपरि दक्षिणोत्तरक्रमेणासादितवारिपूर्णकलशाष्टतये कलशानां पुरतः प्रागग्रेषु कुशेषु स्थित्वा एकस्मादाम्रपल्लवेनोदकं गृहीत्वा । ॐ येप्स्वंतरग्नयः प्रविष्टागोह्यउपगोह्योमयूषोमनोहास्खलोविरुजस्तनूदूषुरिंद्रियहान्विजहामियोरोचनस्तमिहगृह्णामि इति मंत्रेण । ततस्तेन मामभिषिंचामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय इत्यात्मानमभिषिंचति । ततो द्वितीयघटस्थमुदकं गृह्णामि । ॐ येप्स्वंतरग्नय० इति मन्त्रेण गृहीत्वाम्रपल्लवेनाभिषिञ्चति ।

तब इसी प्रकारसे वरुणको सम्बोधन करके नमस्कार करे और आचार्यको भी नमस्कार करे। तब आचार्य कहे "सौम्य आयुष्मान् भव" अर्थात् हे सौम्य! तुम चिर आयुर्दावाले हो। तब अग्निके उत्तरकी ओर सामने कुशा फैला कर उसके ऊपर दक्षिण और

उत्तरके क्रमसे स्थापन किये, जलसे पूर्ण किये हुए आठ कलश पूर्व इत्यादि दिशाओं वाली कुशाके ऊपर एक कलशमेंसे आमके पत्तेसे जल लेकर "ॐ येप्स्वन्तर०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर श्री (लक्ष्मी) यश और ब्रह्मतेज प्राप्त करनेके निमित्त अपनेको मार्जन करे।

मन्त्रोंका अर्थ 'ॐ ये प्स्वन्तर०' जलमें स्थित गोह्य, उपगोह्य, मयूख, मनोहर, खल, विरुज और तनू, दुधु ये जो आठ अग्नि हैं इनको त्याग कर मैं रोचन और कल्याण नामकी अग्नियों सहित जलको स्नान करनेके लिये ग्रहण करता हूँ। 'ततस्तेन०'—इस जलसे लक्ष्मीलाभ, यशलाभ, ब्रह्मज्ञानलाभ और ब्रह्मतेजलाभ हो इसी निमित्त आत्म-सिंचन करता हूँ। इस पूर्वोक्त मन्त्रसे आमके पत्तेसे अपने ऊपर मार्जन करे।

ॐ येन श्रियमकृणुतां येनावमृष्यता ँ सुरां येनाक्ष्यावभ्यषिंचतां यद्वा तदश्विना यशः इति मंत्रेण। ततस्तेनैव क्रमेण 'पुनः येप्स्वंतर' इत्यनेन तृतीयकलशस्थजलमादाय ॐ आपोहिष्ठामयो-भुवस्तानऊर्जेदधातन। महेरणायचक्षुषे। इति मंत्रे-णाभिषिच्य तेनैव क्रमेण येप्स्वंतरग्नय इति मंत्रेण। चतुर्थकलशस्थजलमादाय ॐ योवः शिवतमोरस-स्तस्यभाजयतेहनः। उशतीरिवमातरः। इति मंत्रे-णाभिषिच्य पुनः पंचमकलशस्थं जलं येप्स्वंतर-ग्नय इति मंत्रेण तथैवादाय ॐ तस्मा अरंगमामवो-यस्यक्षयाय जिन्वथ। आपोजनयथाचनः। इति मंत्रेणाभिषिच्य ततोऽवशिष्टकलशात्रितयजलं तथै-व येप्स्वंतरग्नय इति मंत्रेण प्रत्येकं गृहीत्वा तूष्णीं प्रत्येकमभिषिंचति।

अर्थ—जिस जलसे अश्विनीकुमार लक्ष्मीयुक्त हुए, सुरा (मदिरा) से उत्पन्न दोष दूर किये और जिस जलसे उन्होंने नेत्र सींचे उस जलसे मैं अपनी आत्माको सिंचन करता हूँ।

इसके अनन्तर उसी क्रमसे "ॐ येप्स्वन्तर०" इत्यादि मंत्र पढ़कर तीसरे कलशसे जल ले और "आपोहिष्ठा०" इत्यादि मन्त्रोंसे सिंचन करे। और फिर "ॐ येप्स्वन्तर०" इस मन्त्रको पढ़कर चौथे कलशका जल ले और "ॐ योवः शिव०" इस मन्त्रसे मार्जन करे। फिर पांचवें कलशका जल ले और "ॐ तस्मा०" इस मन्त्रसे अभिषेक करे। अब बाकी तीन कलशोंमेंसे भी इसी प्रकारसे जल ले और आगे लिखे मन्त्र पढ़कर मार्जन करे।

ततो मेखलामोचनं शिरोभागेन ॐउदुत्तमं०वरुणपाशमस्मदवाधमंविमध्यम ँ श्रथाय। अथा०वय मादित्यव्रतेतवानागसोअदितयेस्याम इति मंत्रेण। दंडकृष्णाजिने तूष्णीं भूमौ निधाय अन्यद्वस्त्रं परिधायोत्तरीयं च कृत्वाऽऽचम्य बद्धांजलिरादित्यमुपतिष्ठत ब्रह्मचारी। ॐ उद्यन्भ्राजभृष्णुरिंद्रोमरुद्भिरस्थात्। प्रातर्यावभिरस्थातद्दशसनिरसिदशमनिंमाकुर्वाविदन्मागमयोद्यन्भ्राजभृष्णुरिंद्रोमरुद्भिरस्थादहिवायावभिरस्थाच्छतस निरसिशतसनिंमाकुर्वाविदन्मागमयोद्यन्भ्राजभृष्णुरिंद्रोमरुद्भिरस्थात्सायंयावभिरस्थात्। सहस्रसानिरासिसहस्रमनिंमाकुर्वाविदन्मागमय इति मंत्रेण।

तब मेखला (मूंजकी करधनी)को शिरकी ओरसे उतारे और

१ इस मन्त्रकी व्याख्या पहिले हो चुकी है।

"ॐ उदुत्तमं०" मंत्र पढ़े। इसके अनन्तर ब्रह्मचारी दण्ड और काले मृगचर्मको बिना किसी मन्त्रको कहे चुपचाप पृथ्वीपर उतार कर धरे औ दूसरे वस्त्र धारण। बाद डुपट्टा ओढ़कर आचमन करके हाथ जोड़ कर "ॐ उद्यन्०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर सूर्यनारायणका उपस्थान करे।

मन्त्रका अर्थ—प्रातःकाल सूर्य भगवान् सम्पूर्ण मरुत् देवताओंके साथ किरणोंको धारण करते हुए उदय हुए। हे आदित्य! तुम सबको जाननेवाले हो। तुम बहुत धन देनेवाले हो अतएव मुझे भी बहुत धन दो और मुझे ब्रह्मचर्यसे उत्तीर्ण जानो। दूसरी आवृत्तिमें "दिवा या वभिः सायं या वभिः पढ़े"। सायंकालके उपस्थानमें "यावद्भिः शतसनि सहस्रसनि" इतना विशेष है। इस मन्त्रमें दिवा दिनका और सायं सायंकालका वाचक है। शत और सहस्र ये दोनों शब्द अनेक संख्यावाचक हैं। इस प्रकार सूर्य भगवानकी स्तुति करके बहुत धन होनेकी प्रार्थना करे।

ततो दधितिलान्वा प्राश्याचम्य जटालोमनखादींश्छेदयित्वा स्नात्वाचम्य प्रादेशमितोदुंबरकाष्ठेन दंतधावनम्। ओमन्नाद्याऽय्यूहध्व ँ सोमो राजायमागमत्समंमुखंप्रमाक्ष्यतेयशसा च भगेन च इति मंत्रेण। ततो दंतकाष्ठं परित्यज्याचम्य सुगंधिद्रव्येणोद्वर्तनानंतरं स्नात्वा द्विराचम्य चंदनकुंकुमादिना नासिकाया मुखस्यालंभने प्राणापानौ मे तर्प्पय। ॐ चक्षुर्मे तर्प्पय। ॐ श्रोत्रं मे तर्पय। इति मंत्रेणानुलिंपति। ततः पाणी प्रक्षाल्य दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः कृतापसव्यो द्विगुणभुग्नकुशत्रयतिलजलान्यादाय आस्तृ-

तकुशत्रयोपरि पितॄंस्तर्पयेत् । ॐ पितरः शुंधध्व-मिति मंत्रेण । ततः सव्यं कृत्वा आचम्यानुलिप्य जपेत् । ॐ सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयास ँ सुवर्चा मुखेन सुश्रुत कर्णाभ्यां भूयासम् । इति ततोऽहतवासःपरिधानम् । ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शतं च जीवामि शरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये । इति मंत्रेण ।

इसके अनन्तर दधि (दही) अथवा तिल खाकर और आचमन करके जटा, लोम, नख इत्यादि कटाकर स्नान करके फिर आचमन करके प्रादेशमात्र (अर्थात् तर्जनी और अंगूठेके फैलानेके नाप) की गूलरकी दतवन करे और "ॐ मन्नाद्या०" इत्यादि मन्त्र पढ़े।

मन्त्र का अर्थ—हे वनस्पति ! जिस तुमसे वनस्पतिका स्वामी चन्द्र आया सो तुम अब जाओ और कीर्ति और सौभाग्यसे मेरे मुखको अन्न खानेके लिये साफ करो। तब दतवनको फेंककर आचमन करे। सुगन्धयुक्त उबटन लगाकर स्नान करे, दो चार आचमन करे और चन्दन और केसर रगडकर नासिका, मुख, नेत्र और कानोंमें लगावे और अलग अलग "ॐप्राणापानौ०" इत्यादि पढ़े।

इन मन्त्रोंका अर्थ पहले लिखा जा चुका है। इसके अनन्तर हाथोंको धोवे और दक्षिण मुख होकर बांया जंघा तोड़कर अपसव्य होकर (अर्थात् यज्ञोपवीत दाहिने कन्धे पर रखकर) मोस्क तिल और जल हाथमें लेकर तीन कुशा विछाकर उनपर बैठे और "ॐ पितरः०" इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर पितरोंको तर्पण करे। मन्त्र-का अर्थ—हे पितर लोगो, मुझे शुद्ध करो। तब सव्य होकर (बांये कन्धे पर यज्ञोपवीत रखकर) कुमार आचमन करे चन्दन लगावे और "ॐ सुचक्षा०" इत्यादि मन्त्र पढ़े। मन्त्र का अर्थ—मेरे नेत्र सुन्दर, मुख कान्तिवान् और कान सुन्दर होवें। इसके अनन्तर "ॐ परिधा०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर नवीन वस्त्र धारण करे। मन्त्र-

का अर्थ—मैं वस्त्र पहिरूँगा और कीर्ति प्राप्त करूँगा अर्थात् इस मेरे वस्त्र पहिरनेसे मुझे कीर्ति होगी और इस वस्त्र पहिरनेसे मैं सौ वर्ष जीवित रहूँगा और अति तेजस्वी और धनवान हो जाऊँगा ॥

ततो यज्ञोपवीतपरिधानम् । ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्य-मग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । इति मंत्रेण द्वितीयग्रहणम् । यज्ञोपवीतमिति प्र-जापतिर्ऋषिर्यजुरुपवीतदेवता यज्ञोपवीतपरिधाने-विनियोगः । ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञो-पवीतेनोपनह्यामि आचमनम् । अथोत्तरीयम् । ॐ यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेंद्राबृहस्पती यशो भगश्च माविदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् इति मंत्रेण ।

इसके अनन्तर "ॐयज्ञोपवीतं०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर यज्ञोपवीत धारण करे। इस मन्त्रका अर्थ पहले लिखा जा चुका है। यहाँपर दूसरा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। "ॐ यज्ञोपवीतं०" इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि है, यजुरुपवीत देवता है और इसका विनि-योग यज्ञोपवीत धारण करनेमें है। अर्थ—यह यज्ञोपवीत आयुष्यका बढ़ानेवाला, श्रेष्ठ, शुभ्र और अति पवित्र है, यह प्रथम ब्रह्माके साथ उत्पन्न हुआ है। इसके धारण करनेसे बल और तेज उत्पन्न होता है। इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत धारण करनेके उपरान्त आचमन करे। इसके अनन्तर "ॐ यशसा०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर वस्त्र धारण करे। मन्त्रका अर्थ–आकाश और पृथ्वी मुझे यशसे परिपूर्ण करें, इन्द्र और बृहस्पति मुझे यश दें, यश और सौभाग्य मुझे प्राप्त हो। वारंवार मुझे यश मिले।

ततः पुष्पमालाग्रहणे मंत्रः । ॐ या आहरज्जम-दग्निः श्रद्धायै कामयेन्द्रियाय ता अहं प्रतिगृह्णामि

यशसाच भगेन च । इति मंत्रेण पुष्पमालाग्रहणम् । ततः पुष्पमालापरिधानम् । ॐ यद्यशोप्सरसामिं-न्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन संग्रथिताः सुमनस आवघ्नामि यशो मयि । इति मंत्रेण पुष्पमालाप-रिधानम् ।

इसके अनन्तर पुष्पकी माला पहिरनेके मन्त्र कहे हैं । "ॐ याआ-हर०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पुष्पमालाको धारण करे । मन्त्रोंका अर्थ-जिस पुष्पकी मालाको जमदग्नि ऋषिने अपने अभीष्ट फलके प्राप्त करनेके निमित्त धारण किया था उन्हीं पुष्प मालाओंको मैं यश और सौभाग्य प्राप्त करनेके निमित्त चक्षु इन्द्रियोंके पर्यन्त धारण करता हूँ । उपरोक्त मन्त्र पढ़कर पुष्पमालाको हाथमें लेना और "ॐ यशो०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर धारण करना। मंत्रका अर्थ—जो उर्वशी इत्यादि अप्सराओंके धारण करने पर उनके असीम यशका कारण हुआ उसीसे ग्रथे हुए पुष्पोंकी मालाको मैं यश प्राप्त करनेके निमित्त धारण करता हूँ । अर्थात् इस मालाके धारण करनेसे मुझे वही यश मिले जो देवता, अप्सराओं इत्यादिको मिला ।

अथ वस्त्रप्रतिष्ठा । अथोष्णीषेण शिरोवेष्टनम् । ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः तं धीरा सः कवय उन्नयंति स्वा-ध्यो मनसा देवयंतः । इति मंत्रेण ।

इसके अनन्तर वस्तुकी प्रतिष्ठा करे । तब " ॐ युवा सुवासाः०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर सिरपर पगड़ी बाँधे ।

मन्त्रका अर्थ—जो युवा पुरुष वस्त्र धारण करके आया वही श्रेष्ठ होता है । अच्छा वस्त्र पहिरने वाला सुन्दर पुरुष पण्डितोंसे प्रशंसा किया जाता है और हृदयसे लोग उसकी स्तुति करते हैं ।

ततः कुंडले परिदधाति । ॐ अलंकरणमसि

भूयोलंकरणं भूयात् । ततोंजनम् । ॐ वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि । तत आदर्शे आत्मदर्शनम् । ॐ रोचिष्णुरसि इति मंत्रेण । ततश्छत्रग्रहणम् । ॐ बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि । इति मन्त्रेण ।

इसके अनन्तर "ॐ अलंक०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर बालक दोनों कानमें कुण्डल पहने । मन्त्रका अर्थ—हे कर्ण कुण्डल ! तू शोभाको देने वाला है अतएव मेरी शोभा बढ़ा । इसके अनन्तर आंखोंमें "ॐ वृत्रस्यासि०" पढ़कर अंजन लगावे । मन्त्रका अर्थ—हे अञ्जन ! तू वृत्रासुरके नेत्रका तारा है और नेत्र देनेवाला है अतएव तू मुझे नेत्र दे । तब "ॐ रोचि० इत्यादि मन्त्र पढ़कर कुमार दर्पणमें अपना मुख देखे । मन्त्रका अर्थ—हे दर्पण ! तू प्रकाश स्वभाववाला है अतएव मुझे प्रकाश दे । इसके अनन्तर "ॐ बृहस्पते०" यह मंत्र पढ़कर छत्र धारण करे । [मन्त्रका अर्थ—हे छत्र ! तू बृहस्पतिका [आतप (घाम) हटाने वाला है अतएव तू मेरे पाप रूपी आतपसे मुझे बचा । अर्थात् तू सूर्यके आतपसे मुझे निवारण कर तथा मुझमें जो पाप हैं उन्हें भी हटा दे ।

ततः पद्भ्यामुपानहौ प्रतिगृह्णाति । ॐ प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् । इति मंत्रेण । ततो वैणव० दंडधारणम् । ॐ विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः । इति मंत्रेण ।

इसके अनन्तर "ॐ प्रतिष्ठे०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर कुमार जूता पहिरे । मन्त्रका अर्थ—हे उपानह ! तुम चलनेमें उपक्राव हो अर्थात् नहीं थकते, गतिवान् होनेके कारण प्रतिष्ठावाले हो अतएव गतिके विरोधोंसे अर्थात् कंटक इत्यादिसे मेरी रक्षा करो । इसके अनन्तर बांसका दण्ड "ॐ विश्वेभ्यो०" मन्त्र पढ़कर धारण करे । मन्त्रका

अर्थ—हे वेणुदण्ड ! काटने और फाड़ने वाले जो पशु हैं अर्थात् सर्प, तथा सींग वाले जानवर इत्यादि उनसे मेरी रक्षा करो।

ततः स्नातकस्य नियमाः। गानवादित्रनृत्यत्यागः। न तत्र गमनम्। क्षेमे सति न रात्रौ ग्रामान्तरगमनम्। न धावेत् न कूपेऽवेक्षणम्। न वृक्षारोहणम्। न फलत्रोटनम्। अमार्गेण न गच्छेत्। नग्नो न स्नायात् न संधिशयनम्। न विषमभूमिलंघनम्। अश्लीलं नोपवदेत्। उदितास्तसमये सूर्यं नो पश्येत्। जलमध्ये सूर्यं आकाशस्थं न पश्येत्। देवे वर्षति न गच्छेत्। उदके आत्मानं न पश्येत् अजातलोम्नीं प्रमत्तां पुरुषाकृतिं षंढां च न गच्छेदित्यादि। तत आचार्याय वरां दक्षिणां दद्यात्।

इसके अनन्तर स्नातकके नियम लिखे जाते हैं। वे इस प्रकार हैं—स्नातक, गाना बजाना इत्यादिका त्याग करे और इनमें जाना भी त्याग दे अर्थात् न तो वह स्वयं नाचे गावे और न ऐसी मण्डलीमें जाकर उनका तमाशा देखे। क्षेम (अच्छा) होकर रात्रिमें दूसरे गांवमें न जाय। ब्रह्मचारी दौड़े नहीं, कुंवा न झांके, पेड़पर न चढ़े, वृक्षसे फल न तोड़े, बेरस्ते न जाय, नंगा होकर स्नान न करे, सन्धिमें अर्थात् सायंकाल और प्रातःकालके समय न सोवे, ऊँची नीची पृथ्वी पर न कूदे। अश्लील वाक्य (गाली गुप्पड) न बोले, असत्य भाषण न करे और अरसिक न बोले, सूर्यका उदय और अस्त होता हुआ न देखे, जलमें सूर्यकी परछांही न देखे, पानी बरसनेमें न चले फिरे, जलमें अपनी परछांहीं भी न देखे, और रोमरहित उन्मत तथा पुरुषकी आकृति वाले नपुंसक स्त्रियोंके साथ विषय न करे। ये सब कार्य

हो जानेके पश्चात् आचार्यको यथोचित (जहाँतक अपनेसे हो सके) दक्षिणा दे।

ततः मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्यावैश्वानरमृत आजातमग्निं कवि ँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयंत देवाः स्वाहा। इति मंत्रेण फलपुष्पसमन्वितघृतपूर्णस्रुवेण माणवकदक्षिणकरस्पृष्टेन उत्थाय पूर्णाहुतिमाचार्य्यः कुर्य्यादिति। तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना। ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्। ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले। ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति हृदि इति त्र्यायुषं कुर्यात्। अनेनैव क्रमेण कुमारललाटादावपि तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः। ततो मूर्धाक्षतादिग्रहणम्।

इसके अनन्तर "ॐ मूर्द्धानं०" इत्यादि मन्त्रोंसे घृतयुक्त पूर्णाहुति करे। त्र्यायुषं० इस मन्त्रसे ललाट, ग्रीवा दक्षिण बाहु और हृदयमें स्रुवासे हवन भस्म उठाकर अनामिकासे अपने ललाट इत्यादिमें तथा शिष्यके भी ललाट इत्यादिमें लगावे। इसके अनन्तर आचार्य कुमारके मस्तकपर अक्षत पुष्प इत्यादि छिड़के।

अनुक्रमणिका [१]

उपर्युक्त यज्ञ पात्रोंकी आकृति और उनके लक्षण ।

(१) प्रोक्षणी पात्र—प्रणीता नैर्ऋते भागे तच्छायान्यगोचरे ।
वारणं संविजानीयात्सर्वं कर्मसु कारयेत् ॥
सर्वसंशोधनार्थोदपात्रं वारणमिष्यते ।
द्वादशाङ्गुल दीर्घंच करतलोन्मितखातकम् ॥
पद्मपत्रसमाकारं मुकुलाकारमेव वा ॥

अर्थ—यह पात्र बारह अंगुल लंबा और हथेली इतना गहरा होना चाहिये। इसका आकार या तो कमलके पत्ते अथवा कमलके फूलके ऐसा होना चाहिये।

(२) आज्यस्थाली—तैजसी मृण्मयी वापि ह्याज्यस्थाली प्रकीर्तिता ।
द्वादशांगुल विस्तीर्णा प्रादेशोच्चप्रमाणतः ॥

अर्थ—यह स्थाली-तेजसधातुकी (अर्थात् सोने, चांदी, कांसे इत्यादिकी) होनी चाहिये अथवा मिट्टीकी बनी हो बारह अंगुल लंबी और प्रादेश मात्र गहरी होनी चाहिये।

(३) चरुस्थाली—चरुस्थाली तथैवापि दीर्घोच्चातुप्रमाणतः ।
नानयोरन्तरं यस्माद्द्रव्य संस्करणार्थका ॥

अर्थ—यह स्थाली (थाली) भी आज्यस्थालीकी नाईं होती है परन्तु उससे बड़ी और ऊँची होती है। जिस उपयोगमें यह आती है उसीके अनुसार इसका प्रमाण होना चाहिये।

(४) संमार्जन कुशा—स्त्रुव संमार्जनार्थंतु कुशत्रयमुदीरितम् ।

अर्थ—स्त्रुवासे मार्जन करनेके निमित्त तीन कुशाका प्रयोग करना चाहिये।

(५) कुशाप्रमाण—उपयमनार्थमाख्यातास्त्रिपञ्चनवमिताः कुशाः ।
वेणीरूपा निरोधार्था निरोधे बहुभिः सुखम् ॥

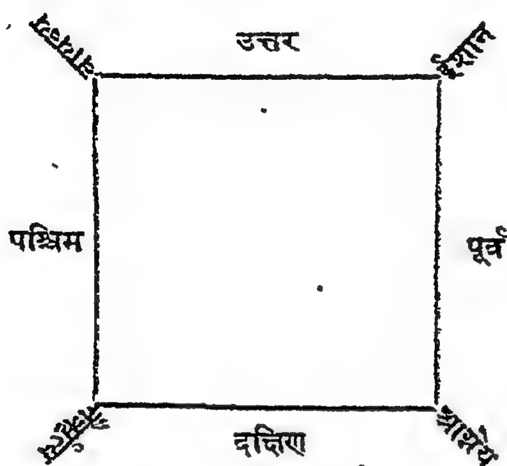
अर्थ—उपयमनके निमित्त तीन, छ, अथवा नौ कुशा वेणीरूप निरोधके निमित्त बताए गए हैं।

(६) समिधस्तिस्रः—पलाशजं तु प्रादेशमात्रं दैर्घ्येण स्थूलता ।
कनिष्ठिका समध्यात्वा विधिमग्नौ क्षिपेच्च तत् ॥

अर्थ—पलाशकी समिधा प्रादेशमात्र लंबी और कानी अंगुली इतनी मोटी अग्निमें हवन करते समय प्रयोग करना चाहिये।

अनुक्रमणिका [२]

आठों दिशाके जाननेके निमित्त निम्नलिखित चक्र
दिया जाता है ।



उपक्रमणिका [३]

उपनयनका समयनिर्णय इत्यादि ।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायकम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

मनु० अ० २, श्लो० ३६ ।

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥३७॥
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नाति वर्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥३८॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथा कालमसंस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥३९॥

अर्थ—गर्भसे अष्टम वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत होना चाहिये, गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रीका और गर्भसे बारहवें वर्ष वैश्यका ।

यदि वेदाध्ययन पूर्णरूपसे कराने तथा उत्तम ज्ञान करानेकी इच्छा हो तो ब्राह्मणका यज्ञोपवीत पाँचवें वर्षमें करना चाहिये। और क्षत्रिय यदि अधिक बलवान होनेकी इच्छा करे तो उसका यज्ञोपवीत छठे वर्ष करना और वैश्य यदि अधिक धनकी लालसा करे तो उसका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष करना चाहिये। ब्राह्मणको सोलहवर्षके उपरान्त, क्षत्रियको बाईस तथा वैश्यको चौबीस वर्षके बाद (अर्थात् यदि इनका इस अवस्था तक यज्ञोपवीत न हो तो) गायत्रीका उपदेश नहीं किया जा सकता। इस अवस्थाके उपरान्त यदि उचित समय पर यज्ञोपवीत न किया जाय तो ये तीनों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) गायत्री पतित हो जाते हैं, निन्द्य होते हैं और ऐसोंको व्रात्य कहते हैं॥

वेदाध्ययनकी अवधिके विषयमें मनुजी इस प्रकार लिखते हैं—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

मनु० अ० ३, श्लो० १।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥ २॥

अर्थ—छत्तीस वर्ष तक गुरुके पास रहकर ब्रह्मचारीको वेदाध्ययन करना चाहिये। इसके आधे (अर्थात् अट्ठारह) वर्ष तक अथवा इसके भी आधे (नौ) वर्ष तक वेदाध्ययन करे (यहाँ छत्तीस वर्ष तीन वेदोंके पढ़नेके वास्ते कहे गए हैं—प्रत्येक वेदाध्ययनमें बारह बारह वर्ष लगते हैं) ब्रह्मचर्यका व्रत न तोड़कर तीनों वेद पढ़े यदि यह सम्भव न हो तो दो वेद पढ़े और यह भी न हो सके तो एक वेद अवश्य ही पढ़े (बिना इसके ब्रह्मचर्य आश्रम त्यागकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश न करना चाहिये)।

यज्ञानां तपसां चैव शुभानाञ्चैव कर्मणाम्।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः॥

याज्ञवल्क्य स्मृ० अ० १ श्लो० ४०।

अर्थ—यज्ञोंके, तपोंके और शुभकर्म करनेके लिये द्विजोंके लिये वेदाध्ययन अति आवश्यक है।

अब मुहूर्तचिन्तामणिके अनुसार यज्ञोपवीतके काल और शुभ मुहूर्त लिखे जाते हैं॥

*विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे
वर्षेवाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजांषष्ठेतथैकादशे ।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद्द्वादशे वत्सरे
कालोऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणंतदाहुर्बुधाः ॥१॥

अर्थ—ब्राह्मणोंका गर्भसे अथवा जन्मसे पांचवें अथवा आठवें वरस में व्रत तेजके निमित्त यज्ञोपवीत करावे, क्षत्रियका बलकी इच्छा-से छठे अथवा ग्यारहवें वरस, और वैश्यका धनकी इच्छासे आठवें अथवा बारहवें वरस यज्ञोपवीत कराना चाहिये और गौण काल विद्वानोंने प्रत्येकमें इससे दुगुना कहा है।

क्षिप्र ध्रुवा हि चरमूल मृदु त्रिपूर्वा
रौद्रेऽर्के विद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत् ।
द्वित्रीषुरुद्र रविदिक्प्रमिते तिथौच
कृष्णादि मत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ॥२॥

अर्थ—हस्त, अश्विनी, पुष्य, रोहिणी, तीनों उत्तरा, आश्लेषा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाती, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों पूर्वा और आर्द्रा ये नक्षत्र यज्ञोपवीतके लिये श्रेष्ठ कहे गये हैं। और बुध, गुरु, शुक्र, सोम ये वार और द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, एकादशी, द्वादशी, दशमी ये तिथियाँ पक्षकी पञ्चमी पर्यन्त तिथियोंमें और इनमें अपराह्न अर्थात् तीसरे पहरको छोड़ ऐसे समयमें यज्ञोपवीत श्रेष्ठ है।

कवीज्यचन्द्र लग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः ।
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः ॥ ३ ॥

अर्थ—छठे अथवा अष्टम स्थानमें शुक्र, गुरु, चन्द्र लग्न स्वामी हों तो यज्ञोपवीत मृत्युकारक होता है और चन्द्र और शुक्र बारहवे स्थानमें अशुभ हैं, और पापग्रह लग्नमें, अष्टम स्थानमें अथवा पञ्चम स्थानमें भी अशुभ कहे हैं।

---

* मुहूर्तचिन्तामणि संस्कार प्रकरण श्लोक ३६ से ६० तक।

व्रतबन्धेऽष्ट पड्ः फलवर्जिताः शोभनाः शुभाः ।
त्रिपडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ॥ ४ ॥

अर्थ—शुभग्रह आठवें, छठें, ग्यारहवें स्थानमें हों तो यज्ञोपवीत शुभ नहीं समझना, परन्तु अन्य स्थानोंमें हों तो शुभ जानना और पापग्रह तीसरे, छठें, ग्यारहवें स्थानमें शुभ नहीं होते परन्तु अन्य स्थानोंमें शुभ होते हैं और पापग्रह तीसरे, छठें, ग्यारहवें स्थानमें शुभ होते हैं। पूर्णचन्द्र, वृष, कर्क तथा लग्नमें हों तो व्रतबन्ध शुभ जानना चाहिये।

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ
राजन्यानामौषधीशो विशांच ।
शूद्राणां ज्ञश्चांत्यजानां शनिस्या-
च्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्याः ॥ ५ ॥

अर्थ—शुक्र और बृहस्पति ब्राह्मणोंके स्वामी हैं; मंगल और सूर्य क्षत्रियोंके; चन्द्रमा वैश्यका स्वामी तथा बुध शूद्रोंका स्वामी है गुरु ऋग्वेदका स्वामी, शुक्र यजुर्वेदका, भौम सामवेदका तथा बुध अथर्व का स्वामी है।

शाखेश वार तनुवीर्यमतीव शस्तं
शाखेश सूर्य शशि जीव बले व्रतं सत् ।
जीवे भृगौ रिपुगृहे विजितेच नीचे
स्यात्वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ॥ ६ ॥

अर्थ—जो अपना शाखाधिप हो और उसका वार, लग्न गोचर हो और बलवान हो तो 'यज्ञोपवीत श्रेष्ठ है। यथा—ऋग्वेदियोंको गुरुवारमें धन, मीन लग्नमें गुरु बलवान् हो तो यज्ञोपवीत अति श्रेष्ठ है और वेदका स्वामी सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति इनके बलमें भी यज्ञोपवीत श्रेष्ठ है और गुरु, भृगु शाखेश वर्गेश रिपुस्थानमें हों तो वर्ज्य है और यदि ये नीच राशिमें हों तो यज्ञोपवीत करनेसे बालक शास्त्रसे विमुख रहेगा।

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।
आद्यगर्भेपि विप्राणां शत्रादीना मनादिमे ॥ ७ ॥

अर्थ—जन्म नक्षत्रमें, जन्ममासमें, जन्म लग्नमें, ब्राह्मणोंके ज्येष्ठ पुत्रका और द्वितीयका यदि यज्ञोपवीत हो तो यह विद्यामें निपुण होवे; क्षत्रिय वैश्यके दूसरे गर्भका बालक जन्म नक्षत्र इत्यादिमें यदि यज्ञोपवीत हो तो व्रती और विद्वान होवेगा।

बटुकन्या जन्मराशेस्त्रिकोणाय द्विशप्तकः।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयान्यत्र निन्दितः॥ ८॥

अर्थ—बालक और कन्याकी जन्म राशिसे नवम, पञ्चम और एकादश तथा सप्तम स्थानोंमें गुरु श्रेष्ठ है और दशवा, छठां तीसरा और प्रथम इन स्थानोंमें पूजा करनेसे श्रेष्ठ है अन्य स्थानोंमें निन्दित है।

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रेवा स्वांशी वर्गोत्तमे गुरुः।
रिःफाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन्॥ ९॥

अर्थ—चतुर्थ इत्यादि नीच स्थानोंमें रहता हुआ भी गुरु यदि कर्कका हो अथवा धन, मीन पर हो वा मेष, सिंह, वृश्चिक पर हो वा धन मीनके नवांशपर हो अथवा वर्गोत्तरमें हो तो शुभफलका देने वाला होता है और मकर राशि तथा शत्रु राशिका गुरु अशुभ होता है।

कृष्णेप्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके।
प्राक्सन्ध्या गर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहे॥१०॥

अर्थ—प्रथम त्रिभाग रहित कृष्ण पक्षमें, प्रदोषमें, अनध्यायमें, शनिवारके दिन, रात्रिमें तीसरे पहरमें, प्रातःकाल तथा गर्जनामें और गलग्रहमें व्रतबन्ध उत्तम नहीं होता।

क्रूरो जडो भवेत्पापः पटुःषट्कर्मकृद्वटुः।
यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात्॥११॥

अर्थ—यदि लग्नमें रवि इत्यादिका अंश हो तो क्रूर, जड़, पापी, चतुर, षट्कर्मी यज्ञार्थ भजनेवाला ये फल क्रमसे जानना।

विद्या निरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः।
चन्द्रे स्वलवे बहु दुःखयुतः कर्णादिभेधन वान्स्ववले॥१२॥

अर्थ—यदि शुभराशिके नवांशमें चन्द्रमा हो तो बालक विद्या पढ़े, करग्रहके नवांशमें यदि चन्द्र हो तो दरिद्री होवे, कर्कका नवांश हो तो अत्यन्त दुखी हो, श्रवण और पुनर्वसू नक्षत्र हों और चन्द्रमा अपने नवांशमें हो तो यज्ञोपवीत अति शुभ है।

राजसेवी वैश्यवृत्तिः शास्त्रवृत्तिश्च पाठकः।
प्राज्ञोऽर्थवान् म्लेच्छसेवी केन्द्रे सूर्यादि खेचरैः ॥१३॥
शुक्रे जीवे तथा चन्द्रे सूर्ये भौमार्किसंयुते।
निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणः सद्युदे पटुः ॥१४॥

अर्थ—सूर्य आदि ग्रह केन्द्रमें हों तो क्रमसे निम्नलिखित फल कहना—राज सेवा करे, वैश्यका कार्य करे, शास्त्र वृत्तिवाला हो, पढावे, पण्डित हो, धनी हो, म्लेच्छकी सेवा करे। शुक्र, गुरु और चन्द्रमा ये ग्रह यदि सूर्य मंगल और शनिश्चरसे युक्त हों तो गुण-शून्य, क्रूर चेष्टावाला, और दयारहित हो और यदि शुभ लग्नोंसे युक्त हो तो चतुर हो।

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ।
समस्तवेद विद्व्रती यमांशगेऽति निर्घृणः ॥१५॥

अर्थ—चन्द्रमा शुक्रके नवांशमें यदि हो, शुक्र त्रिकोणमें हो और बृहस्पति लग्नमें हो तो सम्पूर्ण वेदोंका जाननेवाला हो और इनके नवांशमें चन्द्रमा हो लग्नमें गुरु तथा त्रिकोणमें शुक्र हो तो बालक कृतघ्न होवे।

शुचिशुक्र पौपतपसांदिगश्विरुद्रार्क संख्यसित तिथयः।
भूतादित्रितयाष्टमि संक्रमणं च व्रतेष्वनध्यायाः ॥१६॥

अर्थ—आषाढ शुक्ल दशमी, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, पौष शुक्ल एका-दशी, माघ शुक्ल द्वादशी और चतुर्दशी, पूर्णिमा, प्रतिपदा, अष्टमी, संक्रांति दिन ये यज्ञोपवीतके अनध्याय हैं।

अर्क तर्क त्रितिथिषु मदोषः स्यात्तदग्रिमैः।
रात्र्यर्घ सार्ध प्रहर याममध्य स्थितैः क्रमात् ॥१७॥

अर्थ—द्वादशीके दिन आधी रातके पहिले त्रयोदशी आवे तो

प्रदोष जानना, छठमें ड़ेढ पहर पहिले सप्तमी आवे तो प्रदोष कहना तृतीयामें पहिले प्रहरमें चतुर्थी आवे तो प्रदोष जानना चाहिये।

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद्व्रतबन्धानन्तरं यदि चेत्।
उत्पातानध्ययनोत्पत्तावपि शान्ति पूर्वकं तत्स्यात् ॥१८॥

अर्थ—ब्रह्मौदन पाकसे पहिले और यज्ञोपवीतके अनन्तर यदि उत्पात्त अनध्याय हो तो भी शान्तिपूर्वक यज्ञोपवीत करना चाहिये।

वेदक्रमाच्छशिशिवाहि करत्रिमूल
पूर्वासु पौष्णकर मैत्रमृगादि तीज्ये।
ध्रौवेषु चाश्विवसुपुष्य करोत्तरेश—
कर्णे मृगांत्यलघुमैत्रघनादितौ सत् ॥१९॥

अर्थ—मृगशिरा, अश्लेषा, आर्द्रा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल तीनों पूर्वा इन नक्षत्रोंमें ऋग्वेदवालोंका यज्ञोपवीत शुभ है। रेवती, हस्त, अनुराधा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी तीनों उत्तरा इनमें यजुर्वेदियोंका, अश्विनी, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, आर्द्रा, श्रवण इनमें सामवेदियोंका तथा मृगशिरा, रेवती, पुष्य, अश्विनी हस्त, अनुराधा ,धनिष्ठा, पुनर्वसु इनमें अथर्व वेदियोंका यज्ञोपवीत शुभ है।

नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे तथान्तरेनहि।
शान्त्या चौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्योऽन्यथा न सत् ॥२०॥

अर्थ—नान्दी श्राद्धके अनन्तर यदि बालककी माता ऋतुमती होवे और अन्य शुभ लग्न न मिलता हो तो शान्ति करके मुण्डन, यज्ञोपवीत और विवाह ये श्रेष्ठ हैं और समय नहीं।

विचैत्र व्रतमासादौ विभौमास्ते विभूजिते।
छुरिकाबन्धनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहितः ॥२१॥

अर्थ—चैत्रको छोड़ यज्ञोपवीतमें कहे महीनोंमें अर्थात् माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ इन महीनोंमें और यज्ञोपवीतमें कहे नक्षत्र जन्म लग्न आदिकोंमें और भौम, गुरु, शुक्र इनके अतिरिक्त दिनोंमें भौम छोड़ अन्य वारोंमें विवाहसे पहले क्षत्रियोंका छुरिका-बन्धन शुभ है।

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्त दिवसे शुभम् ।
व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥२२॥

अर्थ—चूड़ा कर्मके लिये कहे दिनोंमें, सोलहवें वर्षमें केशान्तकर्म करना उत्तम है और यज्ञोपवीतके लिये कहे दिनोंमें समावर्तन संस्कार शुभ कहा है।

उपक्रमणिका [४]

वेदका अनध्याय।

याज्ञवल्क्य स्मृतिके प्रथम अध्यायसे उद्धृत:—

त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ।
उपकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखा श्रोत्रिये तथा ॥ १ ॥
सन्ध्यावर्जित निर्घात भूकम्पोल्का निपातने ।
समाप्य वेदं द्युनिश मारण्यकमधीत्य च ॥ २ ॥
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहु सूतके ।
ऋतु सन्धिषु भुक्त्वावा श्राद्धिकं प्रतिगृह्यच ॥ ३ ॥
पशुमण्डूक नकुल मार्जाराश्वाऽहि मूषकैः ।
कृतेन्तरे त्वहो रात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ ४ ॥
श्वक्रोष्ट्र गर्दभोलूक साम वाणार्त निःस्वने ।
अमेध्यशव शूद्रान्त श्मशानपतितांन्तिके ॥ ५ ॥
देशेऽषु चावात्मनि च विद्युत्स्तनित संप्लवे ।
भुक्तार्द्र पाणि रम्भोन्तरर्द्धरात्रेति मारुते ॥ ६ ॥
पांसुवर्षे दिशोदाहे सन्ध्यानीहार भीतिषु ।
धावतः पूति गन्धेच शिष्टेच गृहमागते ॥ ७ ॥
खरोष्ट्रयान हस्त्यश्व नौवृक्ष रिणरोहिणे ।
सप्तत्रिंशदनध्याया नेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥ ८ ॥

अर्थ—शिष्य, ऋत्विक् और बन्धु इनके मरनेपर तथा उपाकर्म (अर्थात् वेदोंके प्रारम्भ करनेके समयमें, भाद्रपद मासमें) और उत्सर्ग (वेदोंके उत्सर्गके समय अर्थात् पौष मास) में और यदि अपनी शाखाका दूसरा पढ़नेवाला भी मर जाय तो दिनका अनध्याय होता है ॥१॥ सन्ध्याके समय यदि मेघ गरजता हो, अकाशमें

उत्पाद हो, भूकम्प अथवा उल्कापात (तारेका टूटना) हो और वेद समाप्त होने पर और आरण्यक पढ़ चुकने पर एक दिन रातका अनध्याय होता है ॥२॥ अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, सूर्य वा चन्द्रग्रहण, ऋतुओंकी सन्धिमें, श्राद्धमें भोजन करनेपर अथवा दान लेनेपर एक दिन रातका अनाध्याय होता है ॥ ३ ॥ यदि पढ़ने और पढ़ानेवालोंके मध्यसे कोई पशु, मेढक, नेवला, कुत्ता, सर्प विडाल अथवा मूसा निकल जावे और इन्द्र ध्वजा जो वर्षके फल जाननेके लिये खड़ी की जाय अथवा उतारी जाय तो एक दिन रातका अनाध्याय होता है ॥ ४ ॥ कुत्ते, सियार, गदहे, उल्लू पत्ती, साम, वाण तथा आतुर पुरुषका यदि शब्द सुन पड़े अथवा अपवित्र वस्तु, मृतक, शूद्र, चाण्डाल, श्मशान और पतित यदि समीप हों तो इनके समीप अनध्याय करना चाहिये ॥ ५ ॥ अपवित्र देश तथा भूमिपर, वारंवार विजली चमकनेपर, मेघ गरजने पर, भोजनके वाद गीले हाथ होनेपर, जलमें खड़ा होकर आधीरातमें और वहुत वायु वहती हो तो वेदका अनध्याय करे (अर्थात् न पढ़े) ॥६॥ धूर वरसती हो, दिग्दाह हो, सध्या अथवा प्रातःकाल कोई भय हो, दौड़ता हुआ अथवा दुर्गन्धके स्थानमें तथा यदि कोई शिष्ट अपने घर आ जाय तो अनध्याय करना ॥७॥ गदहा, ऊंट, रथ, हाथी, घोड़ा, नाव, वृक्ष और ऊसर पृथ्वी पर पद स्थित हो तो तत्काल वेद न पढ़े। ये तेंतीस अनध्याय तभी तक माने जाते हैं जव तक इन घटनाओंकी सम्भावना है (इसके अनन्तर वेदाध्ययन करना योग्य है) ॥ ८ ॥

उपक्रमणिका [५]

यज्ञोपवीत कब और किस प्रकारसे धारण करना चाहिये।

सूतके मृतकेचैव गते मास चतुष्टये।
नव यज्ञोपवीतानि धृत्वाजीर्णानि संत्यजेत् ॥

अर्थ—सूतकमें (सन्तति उत्पन्न होनेपर) तथा मृतके अशौचमें और चार महीनेके उपरान्त नवीन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और जीर्ण यज्ञोपवीत उतार देना चाहिये।

कठाः काण्वाश्च चरका विप्रा वाजसनेयकाः ।
बह्वृचाः सामगाश्चैव ये चान्ये यजु शाखिनः ॥

अर्थ—कठ, कण्व, चरक और वाजसेन शाखाके बह्वृच (ऋग्वेदी) सामवेदी और जो यजुर्वेदी शाखावाले ब्राह्मण हैं वे कण्ठसे यज्ञोपवीत उतारकर फिर संस्कारके योग्य हो जाते हैं ।

छान्दोग्य परिशिष्टमें पारस्कर गृह्यसूत्रके हरिहर भाष्यमें यज्ञोपवीत बनाने तथा इनकी संख्याके विषयमें इस प्रकार लिखा है ।

त्रिविदूर्ध्ववृतं कार्यंतन्तुत्रयमधो वृतम् ।
त्रिवृत्तं चोपवीतंस्यात्तस्ये को ग्रन्थिरिष्यते ॥
आवेष्ट्यषण्णवत्यात त्रिगुणी वृत्य यत्नतः ।
अलिङ्गकै स्त्रिभिर्सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतंच तत् ॥
अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणी कृतम् ।
अधः प्रदक्षिणावृत्तं समंस्यान्नव सूत्रकम् ॥
त्रिरावेष्ट्य दृढं बध्वा हरि ब्रह्मे श्वरान्नमन् ।
सूत्रंसलोमकं चेत्स्या ततः कृत्वात्व लोमकम् ॥
सावित्र्या दश कृत्वोद्भिर्मंन्त्रिताभि स्तदुक्षयेत् ।
विच्छिन्नंवाप्यधोयातं भुक्तानिर्मितमुत्सृजेत् ।
स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्न धार्यंतत्कथंचन ॥
ब्रह्मचारिणमेकंस्यात्स्नातस्यद्वे बहूनिवा ।
तृतीयमुत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते ॥
ब्रह्मसूत्रेऽपसव्येंसे स्थिते यज्ञोपवीतिता ।
प्रचीनावीतितासव्ये कण्ठस्थेतु निवीतिता ॥
कृतेपद्ममयं सूत्रं त्रेतायां कनकोद्भवम् ।
द्वापरे राजतं प्रोक्तं कलौ कर्पाससम्भवम् ॥
विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिवते द्विजः ।
उपवासेन चैकेन पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥
विनायज्ञोपवीतेन् विण्मूत्रोत्सर्गं कुर्यादि ।
उपवास द्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुध्यति ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे गतेमासचतुष्टयं ।
नवयज्ञोपवीतानि धृत्वापूर्वाणि संत्यजेत् ।
पूर्वं यज्ञोपवीतानि शिरोमार्गेण संत्यजेत् ॥

अर्थ—यज्ञोपवीत बनानेकी विधि यह है कि पहिले महीन सूतको तिलरावे और नीचेको (जांघ पर) बहे, फिर तेहरा बटके एक गांठ दे। छानवे (९६) बार इसको लपेट कर (हाथपर चैवा करके) फिर तेहरावे और गांठ साफ करे, फिर धोकर ऊपरको बटकर यज्ञोपवीत बना ले। गायत्री पढ़कर तीन बार लपेट फिर नीचे बटकर नव सूत्र बना तीनबार लपेटे और कसकर गांठी बांधे। सूत्रको इतनी अच्छी तरह बटना चाहिये कि इसमेंसे रोम नाश हो जावे और गांठ इत्यादि न रहे। फिर दस बार गायत्री जप कर धारण करे, स्तनके ऊपर और नाभी के नीचे कदापि यज्ञोपवीत न धारण करे।

ब्रह्मचारीको एक और स्नातकको दो अथवा इससे अधिक यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और उपवस्त्र अथवा वस्त्रके अभावमें तीन यज्ञोपवीत पहरे। अपसव्य यज्ञोपवीतको उपवीतिता और सव्य यज्ञोपवीतको नवीतिता कहते हैं। सतयुगमें पद्म (कमलके वृक्ष) के तन्तुका यज्ञोपवीत, त्रेतामें सुवर्ण, द्वापरमें चांदी और कलियुगमें कपासका यज्ञोपवीत बनाना चाहिये। विना यज्ञोपवीतके द्विजको जल न पीना चाहिये। यदि ऐसा हो जाय तो एक उपवास करने तथा पञ्चगव्य खाकर शुद्धि होती है; विना यज्ञोपवीतके यदि मल अथवा मूत्र त्याग दे तो दो उपवास करे और दान तथा होम करे तब शुद्ध होवे। उपाकर्ममें, उत्सर्गमें तथा चार मास तक एक यज्ञोपवीत पहिरे रह जाय तो इसको इस जीर्ण यज्ञोपवीतको त्याग कर नवीन यज्ञोपवीत धारण करे और पुराना यज्ञोपवीत शिरके द्वारा उतार डाले।

अथ यज्ञोपवीत धारण प्रयोगः।

आचम्य प्राणानायम्य। अथ सङ्कल्पः। अद्येत्यादि मम श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठानसिध्यर्थं यज्ञोपवीत धारणमहं करिष्ये। अथ सूत्र त्रिगुणीकरणम्—इदं विष्णु रिति मेधातिथिर्ऋषिः विष्णुर्देवता गायत्रीछन्दः सूत्र त्रिगुणी करणे विनियोगः। ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढ मस्य पा ँ सुरे स्वाहा। अथ प्रक्षालनम्। आपोहिष्ठेतित्र्यचस्य सिन्धुद्वीपऋषिः आपो देवता गायत्री छन्दः यज्ञोपवीत प्रक्षालने विनियोगः। ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणायचक्षसे। ॐ योव ÷ शिवत मोरसस्तस्य भाजयते

हन ९। उशतीरिव मातर ९। ॐ तस्माऽअरङ्ग मामवो यस्यक्षयाय जिन्वथ आपो जनयथाचन ९। ततः यज्ञोपवीतानि प्रक्षाल्यानन्तरं दश गायत्री मन्त्रैरभिमन्त्र्य तन्तु देवतानामावहनं कुर्यात्। प्रणवस्य पर ब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः प्रथमतन्तौ ॐकारावाहने विनियोगः। ॐ प्रथम तन्तौ ॐ काराय नमः ॐकारमावाहयामि। अग्निंदूत मिति मेधा तिथिर्ऋषिः अग्निर्देवता गायत्री छन्दः द्वितीय तन्तौ अग्न्यावाहने विनियोगः। ॐ अग्निन्दूतम्पुरो देहो हव्यवाह मुपब्रुवे। देवाँ ऽआसादयादिह। द्वतीय तन्तौ अग्नये नमः अग्निमावाहयामि। नमोस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः सर्पा देवताः अनुष्टुप्छन्दः तृतीयतन्तौ सर्पावाहने विनियोगः। ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो येकेच पृथिवीमनु। येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्य ÷ सर्पेभ्यो नमः। तृतीय तन्तौ सर्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि। वय ँ सोमे त्यस्य वन्धुर्ऋषिः सोमो देवता गायत्री छन्दः चतुर्थतन्तौ सोमावाहने विनियोगः॥ ॐ व्वय ँ सोमव्व्रेतवमनस्तनूषु विभ्रत ९ प्रजावन्त ९ सचे माह। चतुर्थ तन्तौ सोमायनमः सोममावा०। उदीरतापित्वस्य शङ्ख ऋषिः पितरो देवता त्रिष्टुप् छन्दः पञ्चमतन्तौ पित्रावाहने विनियोगः। ॐ उदीरता मवरउत्परासऽउन्मद्धमाः पितरे ÷ सोम्यस ÷। असुंय्यऽईयुरव काऽ ऋतु ज्ञास्तेनावन्तु पितरो हवेषु। पञ्चम तन्तौ पितृभ्योनमः पितृना०। प्रजापतये इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः प्रजापतिर्देवता त्रिष्टुप् छन्दः षष्ठतन्तौ प्रजापत्यावाहने विनियोगः ॐ प्रजापते नत्वदेतात्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तुव्वय ँ स्यामपतयोरयीणाम्। षष्ठतन्तौ प्रजापतये नमः प्रजापति मावा०। अनोनियुद्भिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः अनिलो देवता त्रिष्टुप् छन्दः सप्तमतन्तौ अनिलावाहने विनियोगः। ॐ आना नियुद्भि ÷ शतिनीभिरध्वर ँ सहस्त्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्। व्वायोऽअस्मित्सवने मादयस्व यूयम्पातस्वस्तिभि सदा नः ÷। सप्तमतन्तौ अनिलाय नमः अनिलमावा०। सुगाव इत्यस्यात्रिर्ऋषिः गृहपतयो देवताः आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः अष्टमतन्तौ यमावाहने विनियोगः ॐ सुगावो दे सदनाऽअकर्मयऽआजग्मेद ँ सवन शृणुषाणा ९ भरमाणाव्वहमानाहवी ँ ष्यस्मेधत्तव्वसवोव्वसूनिस्वाहा। अष्टम तन्तौ यमाय नमः यममावा०। विश्वेदेवासऽआगत इत्यस्य मधुच्छन्द्रा ऋषिः विश्वेदेवा देवताः त्रिष्टुप्

छन्दः नवमतन्तौ विश्वेषां देवानामावहने विनियोगः। ॐ विश्वे-देवासऽआगत शृणु तामऽइम÷हवम्। एदम्बर्हिर्निषीदत। नव मतन्तौ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवाना०। यज्ञोपवीत ग्रन्थि देवताऽऽवाहनम्। ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः ब्रह्मा देवता त्रिष्टुप् छन्दः ग्रन्थिमध्ये ब्रह्मावाहने विनियोगः। ॐ ब्रह्म जज्ञानम्प्रथ-मम्पुरस्ता द्विसीमत९ सुरुचो वेनऽआव९। सबुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठा९ सतश्चयोनि मसतश्च विव९। इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथि-र्ऋषिः विष्णुर्देवता गायत्री छन्दः ग्रन्थिमध्ये विष्णवावाहनेविनियोगः ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढ मस्यपा ँ सुरे स्वाहा। त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः रुद्रो देवता विराट् ब्राह्मी अनुष्टुप् छन्दः ग्रन्थिमध्ये रुद्रावाहने विनियोगः। ॐ त्र्यम्बकं यजा-महे सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षी यमामृतात्। यज्ञोपवीत ग्रन्थिदेवताभ्यो नमः ग्रन्थिदेवता आवाहयामि। प्रण-वाद्या वाहित देवताभ्यो नमः यथास्थानमहं न्यसामि। मानसोपचारैः संम्पूज्य। अथ ध्यानम्। प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं कार्पास सूत्रोद्भव ब्रह्मसूत्रम्। ब्रह्मत्व सिध्येच्च यश प्रकाशं जपस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्मसू-त्रम्। ॐ युवासुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान्भवति जायमानः। तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः। यज्ञोपवीत धारणम्। यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषि, लिङ्गोक्ता देवताः त्रिष्टुप् छन्दः यज्ञोपवीत धारणे विनियोगः। ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्य मग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञो-पवीतं बलमस्तु तेजः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनो-पनह्यामि। अनेन मन्त्रेण यज्ञोपवीतानां पृथक् २ धारणम्। प्रति यज्ञो-पवीत धारणस्याद्यन्तयोराचमनम्। धारणान्ते जीर्ण सूत्र त्याग मन्त्रं-पठेत्। तद्यथा—एतावाद्दिनपर्यन्तं ब्रह्मत्वं धारितं मया। जीर्णत्वा त्वं परित्यक्तं गच्छसूत्र यथा सुखम्। इति मन्त्रेण जीर्णं यज्ञोपवीतं शिरोमार्गेण निःसार्य भूमौ त्यजेत्। पश्चाद्यथाशक्ति गायत्रीमन्त्र जपं कुर्यात्। अर्पणम्। अनेन नव यज्ञोपवीत धारणार्थं कृतेन यथाशक्ति गायत्री जपकर्मणा श्री सविता देवता प्रीयतांनमम्। ॐ तत्स ब्रह्मा-र्पणमस्तु। यस्य० इति यज्ञोपवीत धारण प्रयोगः।

अर्थ—आचमन और प्राणायाम करके "अद्येत्यादि० सङ्कल्प करे। विनियोग करके "ॐइदं विष्णु०" इत्यादि मन्त्र पढ़ कर सूत्रोंको

तिगुना करे। विनियोग इस मन्त्रका करके "ॐ आपोहिष्ठा०" इत्यादि मन्त्र पढ़ कर धोवे, धोनेके अनन्तर दशवार गायत्री पढ़कर अभिमन्त्रित करे और तन्तु देवताओंका आवाहन करे। प्रथम तन्तुका विनियोग करके" ॐकाराय नमः इस मन्त्रसे आवाहन करे। दूसरे तन्तुमें अग्निदेवताका आवाहन करे, विनियोग करे" ॐ अग्निन्दूत" इत्यादि मन्त्र पढ़े। तृतीय तन्तुमें विनियोग करके "ॐ नमोस्तु०" इत्यादि मन्त्रसे आवाहन करे। चतुर्थ तन्तुमें विनियोग करके "ॐव्वय ॅ० इत्यादि मन्त्रसे सोमदेवताका आवाहन करे। पञ्चम तन्तुमें इसी प्रकार "ॐ उदीरता०" इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करे। छठे तन्तुमें "ॐ प्रजापते० इत्यादि मन्त्रसे प्रजापतिका आवाहन करे, सातवें तन्तुमें "ॐ आनानियु०" इत्यादि मन्त्रसे अनिल देवताका आवाहन करे; आठवें तन्तुमें "ॐ सुगावो०" इत्यादि मन्त्रसे यमदेवताका आवाहन करे, नवें तन्तुमें "ॐ विश्वेदेवा०" इत्यादि मन्त्रसे सर्व विश्वके देवताओंका आवाहन करे। अब यज्ञोपवीतकी ग्रन्थिमें "ॐ ब्रह्मजज्ञान०" इत्यादि मन्त्रसे ब्रह्माका आवाहन करे; "ॐ इदं विष्णु०" इत्यादि मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे और 'ॐ त्र्यंबकं०' इस मंत्रसे महादेवका आवाहन करे। इसके अनंतर 'प्रजापते' इस मंत्र से यज्ञोपवीत का ध्यान करे। अर्थ— "ब्रह्माके साथ उत्पन्न हुए पवित्र और श्रेष्ठ कार्पाससे रचित हे ब्रह्मसूत्र! तुम जयकी सिद्धि जो यश देने वाली है उसका प्रकाश करो। 'ॐ युवा सुवासा०' इस मन्त्रका अर्थ समापवर्तन प्रकरणमें दिया जा चुका है। इसको कहकर इसके पश्चात् "ॐ यज्ञोपवीतं०" इस मन्त्रको पढ़ कर पहिले दाहिने हाथमें यज्ञोपवीत डाल कर तब गलेमें पहने। किसको कितने यज्ञोपवीत पहनना चाहिये यह पूर्वमें लिखा जा चुका है। उसके अनुसार पृथक् पृथक् यज्ञोपवीत धारण करे। प्रत्येक यज्ञोपवीत धारण करनेपर पृथक् पृथक् आचमन उतनी ही बार करे। नवीन यज्ञोपवीत धारण करने पर पुराने यज्ञोपवीतको "एतावं०" मंत्र कहकर सिरसे निकाल दे और आचमन करे। इसके अनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार गायत्री जप करे और उसको सूर्य-भगवानको अर्पण करे।

